ज़ेबुन्निसा के आँसू

लेखक—
श्रीओमप्रकाश भार्गव बी॰ एस-सी॰, विशारद
श्रीईश्वरीप्रसाद माथुर बी॰ ए॰

अनुक्रमणिका

विषय | पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन

इस देश में राष्ट्रीयता के भावों की वृद्धि करने के लिये एक भाषा का होना कितना आवश्यक है, इसके कहने की आवश्यकता नहीं। भावों के आदान-प्रदान का साधन, संगठन का मूल आधार और एकीकरण की नींव भाषा की एकता ही है। सौभाग्य से अपनी सरलता, विशालता और माधुर्य्य के कारण आज हमारी हिन्दी राष्ट्र-भाषा का पद प्राप्त कर चुकी है। राष्ट्रभाषा हिन्दी का वेश-विन्यास और रूपरेखा भी प्रायः निश्चित-सी है। और यह बात सर्वमान्य है कि वह रूप 'हिन्दुस्तानी' ही होगा जहाँ अरब की फारसी उर्दू के रूप में, और भारतवर्ष की संस्कृत हिन्दी के रूप मे, मिलकर गङ्गा-यमुना की भाँति ऐसा सुन्दर संगम निर्माण करेगी जो इस राष्ट्र के लिये सर्वमान्य होगा। जिस प्रकार हिन्दी को समझने के लिये उसको इस नवीन रूप में लाने के लिये, संस्कृत साहित्य को समझना आवश्यक है, उसी प्रकार उर्दू को उसके तद्रूप करके समुन्नत करने के लिये, फ़ारसी साहित्य सागर

का भी मंथन करना आवश्यक है। एक दूसरे को समझकर ही एकीकरण संभव है। इसके लिये हिन्दी के विद्वानो को फारसी साहित्य की खूबियो से, उसके कवियो की मधुर भाव-निर्झरिणी से परिचित होना होगा, और उसीप्रकार उर्दू साहित्यिको को भी संस्कृत साहित्य के काव्य-रत्नो को परखना होगा।

ग्वालियर के उदीयमान लेखक श्रीयुत ओमप्रकाश भार्गव एवं श्रीयुत ईश्वरीप्रसाद माथुर ने इस ग्रंथ की रचना करके इसी ओर अग्रसर होने का उपक्रम किया है। राजकुमारी ज़ेबुन्निसा को एक कवियित्री के रूप मे हिन्दी संसार मे लाने का यह पहिला प्रयत्न है, और इसीलिए सराहनीय भी है। 'काव्य-संग्रह' मे जिस शैली का अनुसरण किया गया है वह आलोचनात्मक होने के कारण अपने ढंग की निराली है, अनुपम है। राजकुमारी की फारसी कविता को इस युग की हिन्दी कविता मे उपस्थित करने मे लेखको को जो सफलता मिली है वह वास्तव में प्रशंसनीय है। हिन्दी कविता का परिधान सुन्दर है और आकर्षक भी है।

मुझे आशा ही नही, विश्वास है कि हिन्दी संसार प्रस्तुत पुस्तक का यथेष्ट आदर कर लेखकों की उत्साह-वृद्धि करेगा।

ग्वालियर,
ता० १८।८।३७

लक्ष्मणराव भास्कर मुले (राव साहब)
रेवेन्यू मिनिस्टर, ग्वालियर गवर्नमेंट

परिचय

राजकुमारी ज़ेबुन्निसा को हिन्दी संसार अब तक मुगल सम्राट् औरंगजेब की आजन्म अविवाहिता पुत्री के ही नाम से जानता है। राजकुमारी के दुःखमय जीवन की झाँकी, उनकी वेदनाओं का इतिहास, उनकी प्रेम-व्यथा, त्याग और बलिदान से हो सकता है। कुछ लोग परिचित हों; किन्तु अभी तक एक उच्चकोटि की कवियित्री के नाते राजकुमारी ज़ेबुन्निसा को हिन्दी संसार नही देख पाया है। भावुकों की जिज्ञासा, कवियों की उत्कंठा और साहित्यिकों की प्यास बुझाने के लिये यह आवश्यक था कि राजकुमारी का जीवन-चरित्र और उनकी भावपूर्ण कविताओं का संग्रह हिन्दी संसार के सम्मुख रखा जावे। आज उसी लक्ष्य को सामने रखकर ग्वालियर के उदीयमान लेखक और कवि श्रीयुत ओमप्रकाश भार्गव 'उमेश' एवं श्रीयुत ईश्वरीप्रसाद माथुर ने प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की है।

इस रचना मे वे कहाँ तक सफल हुये हैं—इसका निर्णय तो आलोचक और पाठक स्वयं कर सकेंगे, मै तो केवल उन्हे आपके सम्मुख लाकर खड़ा कर देना चाहता हूँ।

श्री ओमप्रकाश भार्गव प्रायः गत छः वर्षों से निरन्तर हिन्दी साहित्य की सेवा कर रहे हैं। कवि और कथाकार के रूप मे हिन्दी संसार और विशेषकर ग्वालियर की जनता उनसे भली-भाँति परिचित है। उनकी रचनाये बहुत समय से चॉद, वीणा, सुधा, वाणी, जयाजी-प्रताप, आशा, अजय, आरोग्यमित्र आदि पत्रो मे योग्य स्थान पाती रही है। अन्य व्यक्तियो के साथ उनकी रचनाओ के कई संग्रह भी प्रकाशित हो चुके है, यथा—निकुंज, अंकुर आदि। माननीय मिश्रबन्धुओ ने अपने मिश्रबन्धु विनोद मे आपका आदरपूर्वक उल्लेख किया है। अभी हाल मे ही आपकी मनोरंजक कहानियो का एक संग्रह 'तपस्विनी' के नाम से प्रकाशित हुआ है जिसका हिन्दी ससार यथेष्ट आदर कर चुका है।

श्री ईश्वरीप्रसाद माथुर लेखक के रूप मे जयाजी प्रताप, आशा, आर्य्यमित्र आदि पत्रो द्वारा जनता के सामने आ चुके हैं, और 'ससार का संक्षिप्त इतिहास' नामक पुस्तक का सफल अनुवाद कर प्रसिद्धि भी प्राप्त कर चुके हैं।

इन मँजे हुए लेखकों की प्रतिभापूर्ण प्रखर लेखनी से पुस्तक बहुत ही सुन्दर रूप मे एक नवीन आकर्षक बाना पहिन कर

निश्चित सफलता लिए हिन्दी संसार के सामने आ रही है, ऐसा मेरा विश्वास है।

किसी भी भाषा के काव्य को दूसरी भाषा के काव्य में ही सफलतापूर्वक अनुवाद कर देना सरल नहीं, इसमें प्रतिभा और कला की आवश्यकता है। राजकुमारी जेबुन्निसा की प्रायः सभी प्राप्य कविताओं का अनुवाद हिन्दी की वर्तमान खड़ी बोली की कविता में करके सचमुच लेखकों ने एक प्रशंसनीय उद्योग किया है। और वह उद्योग सफल भी हुआ है। देखिए—

"ए निर्झर ! क्यों आज शोक का,
  यह तुम पर परिधान पड़ा है ?
माथे पर यह बल कैसे हैं ?
  किसके दुख में आज अड़ा है ?
मुझ दुखिया की भाँति रात भर,
  किस निष्ठुर की मधुर याद में ?
पटक-पटक कर सिर पत्थर पर,
  रोते हो तुम किस विषाद में ?

और

पारे-सा बेचैन, उन्न-सा आकुल है उर आज रात को।
मानु ऐसी पाकर मदिरा छन, भूले सुध-बुध आज रात को॥
कहता है फरहाद "कोई,—शीरीं से जाकर कह देना।
मनचल मारन दुख्खकेन-सी करती "मिल लें" आज रात को!"

एक बात और है—

पुस्तक पढ़ते समय पाठक कृपा कर इस बात का ध्यान रखेंगे कि प्रस्तुत कृति केवल इतिहास पर ही अवलम्बित नही, वरन् राजकुमारी जेबुन्निसा के विषय मे जो भी जन-श्रुतियाँ प्राप्त हो सकी है उन सबका संकलन कर के लेखको ने बड़ा काम किया है।

अन्त मे भार्गवजी और माथुरजी को उनकी इस सुन्दर कृति पर बधाई देते हुए भगवान से यही प्रार्थना है कि वह उन्हे सानन्द रख कर उनकी साहित्य-सेवाओ से साहित्य-भण्डार की उत्तरोत्तर वृद्धि करे।

स्वीट काटेज,
लश्कर।
२०।८।३७

रामजीदास वैश्य

राजकुमारी ज़ेबुन्निसा

(जीवन-परिचय)
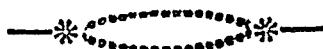
१

लाहोर के निकट नवाकोट स्थान पर टूटे मीनारों और दरवाज़ों के बीच में सुनहरे बुरजों वाली संगमरमर की एक जीर्ण-शीर्ण क़ब्र बनी हुई है, जिसे देखते ही प्राचीन वैभव की स्मृति दर्शकों के मानस-पट पर खिच जाती है। क़ब्र पर बहुत सुन्दर कारीगरी की गई थी, किन्तु अब समय के हाथों वह सब नष्ट हो चुकी है। क़ब्र के चारो तरफ एक बड़ा मनोरम और सुन्दर बाग़ था, जिसके चारों कोनो पर बुरजियोदार दरवाज़े बने हुए थे। बाग़ मे फुलवाड़ी की रविशें और लाल पत्थर की सड़के उसकी शोभा बढ़ाती थी। जगह-जगह पर पानी के हौज़ और सफेद बारादरियाँ अपनी अलग ही छटा दिखाती थीं।

परन्तु जहाँ इतनी रोचकता थी, प्रकृति जहाँ स्वयं हँसी पड़ती थी, वहाँ अब केवल उल्लू बोलते है। चील-कौओ ने अपना घर बना लिया है, और स्थान-स्थान पर फूटे खँडहरो के ढेर एकत्रित होगये है, जिनमे से जंगली घास आप-ही-आप फूट निकली है। कब्र की बरबादी देखकर ही सियालकोट-निवासी कवि 'आदिल' ने क़ब्र पर अपने विचारो की श्रद्धाञ्जलि निम्नलिखित शब्दो मे चढ़ाई है—

है शाम का सितारा बामे-उफ़क़ प' मुजतर,
आँसू टपक रहे है उस तुरबते कुहन पर।
जेबुन्निसा की तुरबत है रूहसोज मंज़र—
इक दर्द है सरापा इक राज़ है सरासर!!
खामोश सब फिजा है।
आलम ही इक नया है।।

कब्र पर फारसी भाषा मे यह पद अंकित है—

बर मजारे मा ग़रीबाँ ने चिराग़े ने गुले—
ने परे-परवाना-सोजद ने सदा-ए-बुलबुले!!

अर्थात्—

मुझ दुखिया की इस समाधि पर दीप पुष्प का मान नहीं है।
शलभ नहीं मरते मिटते है, बुलबुल गाती गान नहीं है!!

कितने करुणापूर्ण शब्द है! भूमि के नीचे गहरी निद्रा मे सोनेवाली राजकुमारी के संतप्त, शून्य जीवन की कैसी करुण गाथा है!! अपना सुहाग लुट जाने के बाद, अपना प्रेम का बाग

उजड़ जाने के पश्चात्, नायिका उस सुनहले मधुर अतीत की स्मृति से हृदय को कस कर पकड़े हुए समाधि के भीगे हुए अंचल मे फूल और हाथ में दीपक लिये आती है। समाधि की धूल झाड़ कर कुसुम चढ़ाती है और दीपक जला देती है, तथा श्रद्धा के भार से अवनत हृदय को रोकर, कलप कर, शान्त करने की चेष्टा करती है। उस नीरव अर्द्ध-रात्रि मे फूलो को देख कर कोकिल करुण स्वर मे प्रेम-संदेश विश्व मे फूँकती है। जलते दीपक पर शलभ प्रेमवश हो अपने प्राण त्याग देते हैं, प्रेम की वेदी पर क़ुरबान होजाते हैं। तात्पर्य यह कि प्रेमी मरने के बाद भी प्रेम के स्वर्ण-मधुर संसार मे भ्रमण करता रहता है, और प्रेमिका दीपक, पुष्प इत्यादि से उसका अर्चन कर अतृप्त हृदय को शांति पहुँचाया करती है।

किन्तु अभागिनी ज़ेबुन्निसा को क़ब्र मे जाकर भी कुछ सुख प्राप्त न हुआ। कवियो की अयाचित प्रेमाञ्जलियों की भी वह अन-धिकारिणी रही। जैसा राजकुमारी ने अपने काव्य में लिखा है, उसके अंतिम जीवन की कहानी, अक्षर-अक्षर, क़ब्र पर अंकित पदों मे छिपी हुई है। उसका कोई प्रेमी न था जो उसकी मृत्यु के पश्चात् क़ब्र पर दीपक जलाता या फूलो की भेंट देता, जिसके कारण पतंगे जल-जलकर अपना जीवन उस पर निछावर करते या बुलबुले अपने हृदय-विदारक करुण स्वर से आसमान को कँपाती। वह तो वास्तव मे एक अधखिली कली थी जो कुछ समय के लिये अपनी महक बखेरकर मिट्टी के ढेर मे सदैव के लिये मुर्झा गई।

फूल तो दो दिन बहारे-जा-फिजाँ दिखला गये।
हसरत उन गुंचो प' है जो बिन खिले मुरझा गये॥

अथवा यो कहिये कि—

शव की नगहतवेज* वह रंगीनियाँ क्या होगई!
सुबह होने भी न पाई थी कि कलियाँ सोगई॥

२

जेबुन्निसा बेगम, जिनका नाम उनके साहित्यानुराग और काव्य-प्रेम के कारण प्रसिद्धि के आकाश पर चाँद की तरह चमकता रहेगा, मुगल सम्राट् औरंगजेब की कन्या-रत्न थी। उनकी माता का नाम दिलरसबानू बेगम था, जो एक ईरानी सरदार शाह नवाजखाँ सकबी की बेटी थी और जिनका विवाह, शाहजहाँ की इच्छानुसार, औरंगजेब से हुआ था। राजकुमारी जेबुन्निसा का जन्म सम्राट् की शादी के दूसरे वर्ष सन् १६३८ मे हुआ था। बाल्य-काल से ही राजकुमारी चतुर, दूरदर्शिका और प्रतिभा-सम्पन्न थी। आठ वर्ष की अल्प आयु मे ही उन्होने समस्त क़ुरान को कंठस्थ कर लिया था। इस खुशी के अवसर पर औरंगजेब ने देहली मे एक नगर-भोज किया था, जिसमे सारे नगर के दीन-हीन फ़क़ीरो को दान दिया गया था तथा राजकुमारी को सोने मे तोल कर वह सारा सोना गरीबो को बाँट दिया गया था। राजकुमारी की मुख्य शिक्षका मियाँबाई ने चार वर्ष मे ही अरबी भाषा का पूरा ज्ञान राजकुमारी को करा दिया था। मगर

* सुगन्ध फैलानेवाली।

राजकुमारी को फारसी भाषा से अधिक प्रेम था। वह छिप-छिप कर फारसी कविता लिखा करती थीं। उनके एक दूसरे शिक्षक शाह रुस्तम ग़ाज़ी ने राजकुमारी की कविता पर मुग्ध होकर भविष्यद्वाणी की थी कि राजकुमारी का नाम, जब तक फ़ारसी भाषा संसार मे प्रचलित रहेगी, अमर रहेगा और उनका यश शताब्दियो तक गाया जायगा।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'

राजकुमारी ने कविता लिखना तेरह-चौदह वर्ष की आयु से ही आरम्भ कर दिया था, किन्तु उनका उस समय का काव्य ऐसा था जैसे जगल की लम्बी घास मे चार-छै सुन्दर फूल खिले हो। अन्य कवियो की भाँति प्रेम, बिछोह, तड़पन, जलन यही उनके काव्य का मर्म होता था।

सम्राट् औरङ्गज़ेब काव्य और गायन-कला के कट्टर विरोधी थे। अकबर और जहाँगीर के समय के बड़े-बड़े कवि और गायनाचार्य औरङ्गज़ेब ने दरबार से विदा कर दिये थे। लेकिन राजकुमारी का काव्य-प्रेम देखकर उन्होने कवियों के लिये फिर एक नया दरवाज़ा खोल दिया था। ग़ज़ले और क़सीदे पेश किये जाने पर उनके बदले मे कवियो को अनेक उपहार और बेशक़ीमती इनामात दरबार से मिलते थे। सम्राट् ने महलो मे दीवान हाफिज (जिसमे शृङ्गार रस के भाव ओतप्रोत हैं) पढ़े जाने की सख्त मुमानियत कर दी थी, मगर राजकुमारी के

लिये दीवान पढ़ने की आज्ञा थी। यही कारण है जो राजकुमारी की ग़ज़ले बहुधा कवि हाफिज से मिलती-जुलती है।

३

जेबुन्निसा बेगम अब यौवन की बीसवी सीढ़ी पार कर चुकी थी। सुन्दरता मे वह अपनी सानी नहीं रखती थीं। लम्बा सर्व-कद, गोल चेहरा और निखरा हुआ रंग तथा बाँये कपोल पर दो तिल उनके रूप-लावण्य मे चार चाँद लगाते थे। उनकी कजरारी काली आँखे, पल्लव के समान पतले-पतले होठ और छोटे-छोटे अनारदाने-से दाँत सौन्दर्य की पराकाष्ठा पर पहुँच गये थे। राजकुमारी की आवाज़ इतनी मधुर और रसीली थी कि जब वह ऊँचे स्वर से क़ुरान का पाठ करती थी तो सुनने वाले मंत्र-मुग्ध-से हो जाते थे। वह बिलकुल सादगी-पसन्द थीं। इसी कारण कपड़े भी बहुत सादा पहनती थी। प्रौढ़ अवस्था मे पहुँचकर तो उन्होने सब कुछ त्याग दिया था। केवल सफेद रंग के कपड़े और गले मे मोतियो की एक माला पहना करती थीं। कभी-कभी कानो मे हीरे-जड़े कर्णफूल भी उनके सौन्दर्य की शोभा बढ़ाते थे।

शाहजहाँ के आदेश से राजकुमारी की सगाई दारा शिकोह के पुत्र सुलेमान शिकोह से होगई थी। राजकुमारी आरम्भ मे ही अपने चाचा दाराशिकोह से बहुत प्रेम रखती थीं। आरम्भ मे जेबुन्निसा बेगम ने जितनी गजले लिखीं वे सब दाराशिकोह को समर्पित की गई थीं। काव्य मे जो कुछ त्रुटियाँ

रह जाती थीं वह सब राजकुमारी दारा शिकोह से ठीक कराती थीं। राजकुमारी का अपने चाचा से इतना घनिष्ठ अनुराग होते हुए भी सम्राट् औरंगज़ेब अपनी कुटिल-नीति के कारण राजकुमारी और सुलेमान शिकोह के विवाह-सम्बन्ध को मंजूर न कर सके, अतः कुछ दिन बाद सुलेमान शिकोह कुटिल-नीति का शिकार बना कर युवावस्था मे ही संसार से विदा कर दिया गया। सुलेमान शिकोह की अकाल-मृत्यु का राजकुमारी पर बहुत प्रभाव पड़ा। कुछ समय के लिये वह अस्वस्थ होगई। इस कारणवश और एक अवसर पर अपनी बड़ी बहन की प्रसव-पीड़ा देखकर उनका हृदय विवाहित जीवन की कठिनाइयों की कल्पना से काँप उठा। उन्होने आजन्म अविवाहिता रहने की प्रतिज्ञा करली। परन्तु समय बीतने पर धीरे-धीरे राजकुमारी के दिल का बोझ हलका होगया और वह संसार की बातो मे दिलचस्पी लेने लगी। कामदेव भी अब अपने मदभरे पुष्प बाण दिनोदिन छोड़ रहा था, इसलिये औरंगज़ेब को राजकुमारी के विवाह की बड़ी फिक्र पैदा होगई। राजकुमारी ने विवाह करने से पहले तो साफ इनकार कर दिया था, मगर पिता की आज्ञा और अन्य सम्बन्धियो के आग्रह को वह अधिक टाल न सकी। उन्होने अनमने मन से अपने विवाह की अनुमति देदी।

राजकुमारी के सौन्दर्य की चर्चा भारतवर्ष से निकल कर ईरान और फारस मे भी पहुँच चुकी थी। कई सरदार और राजकुमार उनसे विवाह करने के लिए लालायित होउठे थे। उनकी ओर

से सम्राट् के पास पैग़ाम पर पैग़ाम आते थे किन्तु, राजकुमारी की उनके प्रति अनुरक्ति न होने से. सम्राट् को जवाब मे खामोश और प्रेमियो को निराश होजाना पड़ता था। राजकुमारी की कला-विज्ञता पर अनेक उच्च कोटि के कवि भी मुग्ध थे। उनका काव्य सुनने के लिए वह अवसर की खोज मे चक्कर लगाया करते थे, मगर कवि-सम्मेलन के अतिरिक्त उनकी इच्छा बिरले अवसर ही पूरी हो पाती थी। जब सम्राट् ने लोक-लज्जा के भय से राजकुमारी को विवाह कराने पर ज्यादा मजबूर किया और उधर ईरानी राजकुमारो के संदेश बराबर आने लगे तो, राजकुमारी ने यह शर्त लगाकर कि मै खुद राजकुमारो की योग्यता की परीक्षा लेना चाहती हूँ, अपने विवाह की प्रकट अनुमति देदी। ईरानी राज-कुमार मिर्जा फारुख, जिसे अपनी योग्यता पर बड़ा अभिमान था, राजकुमारी की स्वीकृति पाकर फूला न समाया और हज़ारो मील का सफर तय करके भारत की राजधानी देहली मे आया। शाही ठाठ-बाट के साथ उसका स्वागत-सत्कार किया गया। उसको शाही बाग मे महमान बनाकर ठहराया गया। एक दिन राज-कुमारी अपने बावरचीखाने मे गरीबो को खाना बाँट रही थी। तुरन्त ही एक खवास ने ईरानी राजकुमार का एक परचा लाकर दिया, जिसपर फारसी भाषा मे लिखा था—"संबोस-ए-बेसन मी ख्वाहम" अर्थात् दान मे मुझे भी बेसन का समोसा चाहिए। फारसी भाषा मे 'बोसे' का अर्थ होता है चुम्बन। अत. राजकुमार के लिखने का तात्पर्य यह था कि मुझे तुम्हारा एक चुम्बन चाहिए।

क्योंकि जब संबोसे में से 'सं' अक्षर निकाल दिया जाय तो 'बोसा' शेष रह जाता है। चतुर जेबुन्निसा बेगम राजकुमार की नीचता को ताड़ गई और काग़ज़ की पीठ पर उत्तर में लिख भेजा—"अज़् मतबख़े मा तलब कुन" यानी हमारे बावरचीख़ाने से माँगले। ओहो, कैसा मुँहतोड़ उत्तर दिया! बेहया को राजकुमारी अपने हाथ से दान देना भी नहीं चाहती और फ़कीरों की भाँति बावरचीखाने से भीख माँगने को कहती है! दूसरे दिन राजकुमारी ने सम्राट् से कह दिया कि यद्यपि राजकुमार धनवान, सुन्दर तथा शिक्षित है, किन्तु परले दर्जे का बेहया है। मैं ऐसे आदमी के साथ जीवन व्यतीत करना नहीं चाहती। मुँह की खाकर भी प्रेमी फ़ारुख ने राजकुमारी को निम्नलिखित पद उत्तर की प्रतीक्षा में लिख भेजा—

मुक़र्रर करदा अम दर दिल अज़ी दरगाह न ख़्वाहम रफ़्त,
सर ईजा सिजदा ईजा बन्दगी ईजा क़रार ईजा।

अर्थात्—प्रिये, तुम्हारे प्रेम-मन्दिर को छोड़कर अब मैं कहीं नहीं जा सकता। मैं यहीं सर झुकाऊँगा, यहीं जीवन की बलि दूँगा। मेरी प्राणाधार, मैं तुम्हारा दिल से पुजारी हूँ। तुम्हारे बिना मुझे क्षण भर भी चैन नहीं मिल सकता।

राजकुमारी ऐसे निर्लज्ज भाव पढ़कर बहुत क्रोधित हुई और सदा के लिए राजकुमार को यह उत्तर देकर पीछा छुड़ाया—

च आनाँ दीदए आशिक़ तरीक़े इश्क़बाज़ी रा,
नप ईजा आतिश ईजा अख़गर ईजा-ओ-शरर ईजा।

अरे मूर्ख ! प्रेम को क्या तूने खेल समझ रक्खा है ! इस रास्ते मे व्याकुलता, जलन और चिनगारियाँ है। जिन-जिन मुसीबतो का सामना करना पड़ता है, उनसे पहले परिचित तो हो ले ! फिर मुझसे प्रेम करने का साहस करना ! निराश होकर राजकुमार अपने देश को लौट गया।

विवाह का इच्छुक फारिस का एक दूसरा राजकुमार, जो शाही महलो मे मह्मान की हैसियत से ठहरा हुआ था, राजकुमारी को भेट करने के लिए फूलो का एक सुन्दर गुलदस्ता बनाकर लाया। राजकुमारी मुख पर नक़ाब डाले हुए बाग़ की रविशो पर प्रकृति का पूर्ण आनन्द ले रही थी। तुरन्त राजकुमार ने फूलो का गुलदस्ता उनको पेश किया। फूल बड़े लुभावने थे। फूलो की हँसी को देखकर राजकुमारी के हृदय मे काव्य की तरंगे लहरे लेने लगी। उन्होने राजकुमार को सम्बोधित करते हुए प्रश्न किया—

> बिगो-ए-आशिके-सादिक़ चरा ई गुलदस्ता आवुर्दी,
> दिले-बुलबुल शकिस्ती-ओ तो गुलरा खस्ता आवुर्दी।

ए सच्चे प्रेमी, बतला, यह गुलदस्ता तू क्यो लाया है ? ऐसा करके तू ने बड़ी भूल की है। एक तो बुलबुल का दिल तोड़ा है। दूसरे फूलो को उनके स्थान से तोडकर उनको जख्मी किया है। उनको तूने कम दु ख नही पहुँचाया। राजकुमार जेबुन्निसा के इन गूढ विचारो पर मन-ही-मन मुग्ध होगया। उसके पास भी

कवि का हृदय था। वह समय पर बात निभाना जानता था। तुरन्त उसने तबीअत फड़कानेवाला उत्तर दिया—

न बराए ज़ेबो ज़ीनत, ई गुलदस्ता आवुरदम,
बर हुस्ने तो गुल ला फज्द दस्तबस्ता आवुरदम।

ऐ राजकुमारी, मै तेरी सजावट या तुझे भेट करने के लिए यह गुलदस्ता नहीं लाया, और न ऐसा करके मै ने किसी का दिल दुखाया है। वास्तव मे बात यह थी कि जब मै तुमसे मिलने के लिए आ रहा था तो यह फूल हँस-हँस कर अपने रूप की डींग मार रहे थे। मुझसे यह कब देखा जा सकता था कि संसार में कोई भी सिवा ज़ेबुन्निसा के अधिक सुन्दर होने का दावा रखे। मै ने तुरन्त फूलो का सर काट लिया और बाँध कर आपके हुज़ूर मे ले आया, जिससे यह अभिमानी फूल तुम्हारी चन्द्रमा को लजानेवाली मुखश्री को देखकर अपने झूठे गर्व पर लज्जित हो। ज़ेबुन्निसा राजकुमार के इन उच्च भावो और काव्य-लहरी को सुनकर फड़क उठी और खुश होकर उन्होंने अपने मुख से नक़ाब हटा दिया और जी भर कर प्रेम के प्यासे को अपने मुख कांति के जल से प्यास बुझाने दी। मगर भाग्य-वश यह दोनों प्रेम-विवाह के सूत्र से न बँध सके!

५

महलो मे राजकुमारी को पूरी स्वतंत्रता थी। वह बहुधा दरबार मे सम्मिलित होती और अपने पिता को राज-काज मे सहायता

देती थीं। मगर जब वह दरबार मे जातीं तो मुख पर नक़ाब डालकर। इसीलिए उन्होंने अपना उपनाम भी 'मख़फी' अर्थात् छिपा हुआ रख छोडा था। किसी अवसर पर एक अन्य राजकुमार ने राजकुमारी को यह पद लिख भेजा—

बुलबुले रूयत शवम गर दर चमन बीनम तुरा,
मन शबम परवाना गर दर अजुमन बीनम तुरा।
खुदनुमाई मी कुनी ऐ शम-ए-महफ़िल खूब नेस्त,
मन हमी ख्वाहम कि दर यक पैरहन बीनम तुरा।

अर्थात् हे राजकुमारी, यदि किसी सुन्दर उपवन मे मै तुझे देखता तो तेरे अरुण-कपोल-रूपी गुलाबों के कारण बुलबुल बनकर तेरे चारों ओर मॅडलाता, और यदि कही तुझे किसी सभा मे देख पाता तो शलभ बनकर तुझ पर क़ुरबान हो जाता! हे सभाओं की ज्योति! तू जो दूसरों को दर्शन देती है यह ठीक नही है। मेरी तो केवल यह अभिलाषा है कि तुझे मै ही निकट से देखूॅ।

राजकुमारी भला इन काव्य-कटाक्षों को कब सहन कर सकती थी। तुरन्त उसको उत्तर दिया—

बुलबुल अज गुल बिगजरद गर दर चमन बीनद मरा,
बुत-परस्ती कै कुनद गर बिरहमन बीनद मरा।
दर सखुन पिनहा-शुदम चूॅ बू-ए-गुल दर बर्गे गुल,
हरकि दीदन मैल दारद दर सखुन बीनद मरा।

अर्थात्—

देख कर बुलबुल मुझे,
हँसकर कुसुम को छोड़ देगी।
तोड़ प्रतिमा को पुजारिन,
आ मुझी पर प्राण देगी॥
मै छिपी हूँ काव्य मे,
जैसे सुमन मे हो सुरभि।
खोजती जो कामना है,
वह वही पर खोज लेगी॥

मेरा सौन्दर्य ऐसा अनुपम है जो बाग़ मे बुलबुल कही मुझे देख ले तो फूलो से प्रेम करना छोड़ दे। और जो कही कोई पुजारी मेरा दर्शन करले तो मूर्ति-पूजन को त्याग दे, यानी मुझे पूजने लगे। अतः जो मुझे देखने के इच्छुक हो वह मुझे मेरे काव्य मे देख सकते हैं। मैं अपने काव्य मे ठीक ऐसे ही छिपी हूँ, जैसे गुलाब मे उसकी सुगन्ध। आशाओं के विपरीत राज-कुमारी के मुँह से ऐसा टका-सा जवाब पाकर राजकुमार चुप हो रहा।

साहित्य-प्रेमिका होने के साथ-साथ जेबुन्निसा बेगम दया, शीलता और नम्रता के भावो से परिपूर्ण थी। कष्ट और दुःख के समय वह कभी धीरज और संतोष को हाथ से न छोड़ती थीं। किसी ने कभी उनके माथे पर क्रोध की रेखा नही देखी। सदा मुख पर मुसकराहट और शान्ति अठखेलियाँ किया करती थीं।

राजकुमारी लड़ने मे भी निपुण थी। वह कई अवसरो पर बड़ी वीरता से मैदान मे अपनी तलवार के जौहर दिखा चुकी थी। अपने खुद के व्यवसाय से वह असहाय बालको तथा विधवाओ की सहायता भी किया करती थी। मक्का मदीने की हज करने-वालो को वह सफर-खर्च बॉटा करती थी। सक्षेप मे राज-कुमारी असीम दया, अनुपम सौन्दर्य और अनूठी कविता की जीती-जागती प्रतिमा थी।

५

सन् १६६२ मे सम्राट् औरङ्गज़ेब किसी विकट रोग से पीड़ित होगए। बहुत इलाज कराने पर भी कुछ लाभ न हुआ। हकीमो ने हवा बदलने की सलाह दी। सम्राट् अपना दरबार देहली से लाहोर लेगए। यहाँ आकर उन्हे आशा से अधिक स्वास्थ्य-लाभ हुआ। बीमारी के सिलसिले मे देहली से बेगमात इत्यादि भी बुलवाली गई, जिनमे राजकुमारी जेबुन्निसा भी सम्मिलित थी। राजकुमारी लाहोर मे क्या आई मानो काव्य के बगीचे मे मस्तानी हवा चलने लगी। नित्य मुशाइरे—कवि-सम्मेलन जमने लगे और दरबार मे कवियो का जमघट नजर आने लगा।

इसी समय लाहोर का गवर्नर आकिलखॉ नामक एक व्यक्ति था जो राजकुमारी की भॉति एक अच्छा कवि था। वीरता और रूप के लिए वह समस्त पञ्जाब में विख्यात था। राजकुमारी के सौन्दर्य और कविता की प्रशसा तो उसने बहुत पहले ही सुन रखी थी। अब केवल वह उनके दर्शनो का

अभिलाषी था। राजकुमारी की एक झलक देखने के लिए वह रात तारे गिन-गिन कर बिताता और दिन आँसुओ से मुँह धोकर काटता था। महीनो इसी आशा को हृदय मे लिए हुए उसने क़िले के अनगिनत चक्कर लगाये, किन्तु मन की लगन पूरी न हुई। एक दिन जब ज़ेबुन्निसा लाल रंग की पोशाक पहने महल की छत पर सूर्यास्त का दृश्य देख रही थीं, भाग्यवश आक़िलख़ॉ की नज़र उन पर पड़ गई। शाहज़ादी को देखते ही सहसा उसके मुँह से निकल पड़ा—

'सुर्ख़ पोशे ब लबे बाम नज़र मी आयद'

यानी लाल वस्त्र धारण किए हुए एक सुन्दरी छत पर नज़र आ रही है। अब तक तो राजकुमारी ने आक़िलख़ॉ का नाम ही उच्च कोटि के कवियो मे सुन रखा था, आज जो उन हज़रत को प्रत्यक्ष देखा और उनके तीव्र कटाक्ष को सुना तो वह उन्हें तुरन्त ताड़ गई। आक़िलख़ाँ के उपर्युक्त पद का तत्काल यह उत्तर देकर राजकुमारी महल मे चली गई—

'न ब जारी न ब ज़ोरो न ब जर मी आयद'

ऐ हज़रत, जिस परी को देख कर तुम रीझे हो वह न तो सन्ताप, न शक्ति और न सम्पन्नता ही से हाथ लग सकती है। अर्थात् जिस सुन्दरी की तुम प्रशंसा कर रहे हो उसको प्राप्त करना कोई हँसी-खेल नही है; जाओ, अपना रास्ता लो।

लाहोर मे सम्राट् के विश्राम करने का समय और बढ़ गया। इस दरमियान राजकुमारी ने वहाँ एक सुन्दर बाग़ बनवाना शुरू कर दिया। बाग़ बन जाने के पश्चात् एक दिन राजकुमारी अपनी सहेलियो के साथ संगमरमर की बारादरी मे चौसर खेलने मे निमग्न थी। आक़िल खाँ शरीर पर धूल डाले एक मजदूर का भेष धारण किये बाग़ मे घुस आया। आक़िल खॉ, जिसके दिल मे ज़ेबुन्निसा के प्रति प्रेमपूर्ण भावो का समुद्र उमड़ने लगा था, सदा उनसे मिलने के अवसर की खोज मे रहा करता था। मौक़ा पाकर वह बाग मे आगया और राजकुमारी के खुले सौन्दर्य को देखकर मन मे फूला न समाया। मुद्दत से देखने की अभिलाषा आज क्षण भर के लिए पूरी हुई। उसके काव्यमय हृदय से अकस्मात् यह पद निकल पडा—

'मन दर तलबत गिरदे जहॉ मी गरदम'

राजकुमारी, मै तेरी खोज मे सारे संसार मे चक्कर लगाता फिरता हूँ। मगर तेरा कही भी पता नही मिलता। आज बड़े सुयोग से तेरे दर्शनो का अवसर प्राप्त हुआ है। राजकुमारी ने जो निगाह उठाकर देखा तो आक़िल खॉ को एक अजीब छद्मवेश मे खड़ा पाया। उन्हे पहचानने मे तनिक भी देर नही लगी और तुरन्त आक़िल खाँ के पद का उत्तर भी देडाला—

'गर बाद शवी बर-सरे-ज़ुल्फ़म न रसी।'

अगर तू वायु का रूप धरकर भी सारी दुनिया मे भ्रमण

कर आवे तो मेरी ज़ुल्फ़ों के बालों तक भी नहीं पहुँच सकता। मुझे पाना तो दुर्लभ है, अर्थात् मुझे पाने के लिए जिन मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा पहले उनसे तू परिचित तो होले; फिर मुझे पाने की अभिलाषा करना।

खेल समाप्त होगया। राजकुमारी अपनी सहेलियों के साथ अन्तःपुर की ओर चली गई। निराश आक़िलख़ाँ राजकुमारी से बेरुख़ी का जवाब पाकर जहाँ से आया था वहीं चला गया। परन्तु अपने साथ लेता गया सुखद स्मृतियाँ और राजकुमारी का मुखचन्द्र देख सकने का आनन्द।

६

इसके पश्चात् ज़ेबुन्निसा और आक़िलख़ाँ अक्सर मिलते। एक दूसरे पर काव्य-कटाक्ष होते और आपस में चिट्ठी-पत्री द्वारा हृदय मे उमड़नेवाले भावो की गंगा बहाई जाती। धीरे-धीरे प्रेम ने दोनो दिलो में आधिपत्य जमा लिया, किन्तु प्रेम और सुगन्ध छिपाने से नहीं छिपते। बात बढ़ती गई और एक दिन किसी दिलजली ख़वास ने औरंगज़ेब को ज़ेबुन्निसा और आक़िलख़ाँ की सारी प्रेम-कहानी कह सुनाई। सम्राट् क्रोध से काँपने लगे, पर बोले कुछ नहीं। केवल राजकुमारी को देहली फौरन् लौट जाने का फ़रमान जारी कर दिया और थोड़े समय बाद खुद भी देहली आकर शीघ्र ही राजकुमारी के विवाह की कोई युक्ति सोचने लगे। उधर राजकुमारी पर भी विवाह करने के लिये ज़ोर डाला गया। तब उन्होने अपने पिता से विनय-

पूर्वक कहा कि मै पिता की आज्ञा को कब टाल सकती हूँ ; मगर मेरी एक विनय यदि स्वीकार की जायगी तो मै बहुत कृतज्ञ होऊँगी। आप सब देशो मे यह ऐलान करादे कि जो शहज़ादा जेबुन्निसा से विवाह करना चाहता हो, वह अपना चित्र दरबार मे भेज दे; राजकुमारी खुद उन चित्रो को देखकर पति-निर्वाचन करेगी। औरंगज़ेबने राजकुमारी को विवाह के सम्बन्ध मे पूरी स्वतन्त्रता दे रखी थी, उन्होने राजकुमारी की इस तजवीज़ को पसन्द किया और तुरन्त सारे हिन्दुस्थान मे उपर्युक्त ऐलान करा दिया। ऐलान होने की देर थी कि तसवीर पर तसवीर आने लगी—चित्रो के ढेर लग गए। इन चित्रो मे आक़िलख़ाँ की भी दरख्वास्त और तसवीर थी। चित्र देखते ही राजकुमारी के मस्तिष्क मे आक़िलख़ाँ-सम्बन्धी सब पिछली घटनाये घूम गई। सब चित्रो मे से राजकुमारी ने आकिलखाँ का ही चित्र छाँट कर अपने विवाह की स्वीकृति दे दी। सम्राट् ने इस चुनाव मे कोई आपत्ति नही की। फौरन् लाहोर आक़िलख़ाँ को राजकुमारी के विवाह का शुभ समाचार लिख दिया गया। सहसा शादी का पैग़ाम पाकर आकिलख़ाँ के हर्ष का पारावार न रहा। उसके दिल की मुरझाई हुई कली खिल उठी। वह ठाठ-बाट से देहली आने की तैयारियाँ करने लगा। मगर भाग्य मे तो कुछ और ही बदा था। किसी निराश प्रेमी ने आक़िलख़ाँ को यह लिख भेजा—

चला है ओ दिले नादाँ कहाँ तू शादमाँ होकर,
जमीने कू-ए-जानाँ रज देगी आसमाँ होकर।

शहज़ादियो से प्रेम करना कोई आसान बात नहीं है, हजरत् ! इतने खुश होकर कहाँ जाते हो; प्रेमिका की गली की ज़मीन आसमान बनकर तुम्हे दुख देगी। तुम्हारी सारी करतूतें, तुम्हारा राजकुमारी से चुपके-चुपके भेंट करना सम्राट् को सब मालूम हो चुका है। तुम्हें शादी के बहाने बुलाकर उनका इरादा तुम्हें मार डालने का है; क्योंकि तुम्हारे कारण राजकुमारी की बहुत काफी बदनामी हो रही है। सच मानो, अगर गए तो अपने किये की सज़ा पाओगे।

नादान प्रेमी आक़िलख़ाँ किसी दिल-जले प्रेमी के इन वाक्यों को सत्य समझ बैठा, और प्रसन्नता के बजाय उस पर दुःख के बादल छागए। सुखद मिलन की सब आशाऍ बुलबुलो की भॉति उठी और उठकर लुप्त होगई। इच्छानुसार पूरी होने-वाली भावी अभिलाषाये बालू की भीत के समान ढह पड़ी। उमड़ते हुए बादलो की तरह हृदय मे कविता के भाव घुमड़ कर रह गये। जाने की सब तैयारियॉ बन्द करदी गई। मूर्ख आक़िल ख़ाँ ने सम्राट् को उत्तर मे लिख भेजा कि मुझे यह शादी मंजूर नही। साथ-साथ नौकरी से भी मेरा इस्तीफा मंजूर हो। कहॉ मै और कहाँ सम्राट् की पुत्री; मेरा आपका सम्बन्ध कैसे हो सकता है। औरङ्ग़ज़ेब को यह उत्तर पाकर कितनी निराशा और कितना क्रोध आया होगा, इसका अनुमान करना सम्भव नही। इस विषय मे सम्राट् ने अपने विचार कुछ प्रकट न किए। केवल आकिलख़ाँ के उत्तर को एक मामूली बात समझकर टाल दिया।

आक़िलख़ाँ यह मूर्खता कर तो बैठा, किन्तु अपने मन मे वड़ा दुःखी हुआ। वह सोचने लगा कि वड़ी मुश्किल से तो यह सुअवसर प्राप्त हुआ था, मुद्दतो के अरमान पूरे होते; राजकुमारी से काव्य-कलोले होतीं, उन सब को मैंने मूर्खतावश हाथ से खो दिया। विवाह करने से तो उसने इनकार करदिया था, मगर राजकुमारी के लिए उसके दिल मे अब भी बिल्कुल वैसा ही प्रेम वना था। उनसे भेट करने की इच्छा उसके दिल मे फिर भी प्रवल हो रही थी।

वहुधा अपनी भूल पर पश्चात्ताप कर वह कल्पना मे राजकुमारी से क्षमा-याचना करता। अपने चारो ओर उनकी प्रतिमा देख कर पागल हो जाता। जव राजकुमारी की याद ने उसे अधिक वेचैन कर दिया, तो वह गुप्त रीति से एक दिन लाहोर से देहली आया और छिपकर राजकुमारी से मिला। वाद को ख़वासो और सहेलियों को मिला कर उनसे रोज़ भेंट करने लगा। आपस मे फिर वही काव्य-कटाक्ष चलने लगे। प्रेम-मदिरा के प्याले-पर-प्याले ढलने लगे। एक दिन आक़िलख़ाँ को राजकुमारी ने एक पर्चे पर लिख भेजा—

शुनीदम तर्क ख़िदमत कर्द आक़िलख़ाँ व नादानी

सुनती हूँ आक़िलख़ाँ ने मूर्खतावश दरबार की नौकरी छोड दी है। राजकुमारी के उक्त पर्चे पर निम्नलिखित उत्तर देकर आक़िलख़ाँ ने उसे दासी के हाथो लौटा दिया—

चरा कारे कुनद आक़िल कि बाज़ आयद पशेमानी।

चतुर मनुष्य ऐसा काम क्यों करे कि अन्त में उसे पछताना पड़े। आक़िलखाँ के कहने का तात्पर्य यह था कि मैं नौकरी न छोड़ता तो और क्या करता। शादी का होना कैसा! यहाँ तो मेरी जान लेने की तैयारियाँ हो रही थी। शादी के लिए बुलाना तो केवल एक बहाना था।

महलों में आक़िलखाँ का गुप्त रीति से आना-जाना बन्द न हुआ, और कुछ दिन पश्चात् ही औरंगजेब को आक़िलखाँ की उपस्थिति की सूचना होगई। हरम—जनाना महल—चारों ओर से घेर लिया गया। सम्राट् राजकुमारी के महलों में खुद आए। जब उनके आने की खबर जेबुन्निसा और आक़िलख़ाँ को हुई तो सम्राट् के आतङ्क और भय से दोनों के हाथ-पाँव फूल गए। कुछ करते-धरते न बना। जब कोई उपाय न सूझा तो राजकुमारी ने सामने रखे हुये एक देग़ में आक़िलख़ाँ को छिप जाने को कहा। जब आक़िलख़ाँ देग़ में छिप गया तो ऊपर से राजकुमारी ने देग का मुँह कपड़े से ढँक दिया। आते ही सम्राट् ने भी चोर की तलाश की। खवासों को डराया, धमकाया, मगर पता कुछ न पाया। ख़वासें भी राजकुमारी से बहुत डरती थीं। खुल्लमखुल्ला उनका विरोध करने का उनमें साहस न था। जब औरंगजेब ने सच बात बताने के लिये खवासों को बहुत कुछ डाँटा डपटा, और भेद छिपाने के अपराध पर प्रत्येक को मृत्यु-दण्ड देने की धमकी दी तो एक नीच खवास ने चुपके से

देग़ की ओर इशारा कर दिया। सब मामला समझ कर सम्राट् ने राजकुमारी से पूछा "इस देग मे क्या है?" राजकुमारी ने दबी .ज़ुबान से उत्तर दिया "गरम करने का पानी।" सम्राट् ने फिर पूछा "तो पानी गरम क्यो नही करती?" राजकुमारी चुप हो रही। मुँह से कुछ बोल न सकी। कई बार प्रेम-कहानी को साफ-साफ कहना चाहा, परन्तु प्रत्येक बार लज्जा ने ऑचल पकड़ लिया। अन्त मे सम्राट् ने तुरन्त देग के नीचे आग जलाये जाने की आज्ञा देदी। आज्ञा पाते ही खवासो ने आग जलादी। आग जलते ही बेचारे आक़िलखाँ पर जो कुछ बीती होगी उसे तो वही जाने, किन्तु राजकुमारी का बुरा हाल था। वह सोच रही थी कि मेरे कारण व्यर्थ मे आक़िलखाँ की जान जा रही है। उनका विचार था कि थोड़ी देर बाद सम्राट् यहाँ से चले जायँगे, और मै आक़िलख़ाँ को जीवित देग मे से निकाल लूँगी; मगर सम्राट् भी अपनी हठ के पूरे थे। जब तक आक़िलख़ाँ देग मे उबलकर मर न गया वह वहाँ से न टले। राजकुमारी ने देग के पास जाकर धीरे से कहा, "आक़िलखाँ, अगर तू मेरा सच्चा प्रेमी है तो आग मे जलकर प्राण दे देना मगर मुँह से उफ न करना।" कई इतिहासकारो का कहना है कि प्रेयसी के संकेतानुसार सच्चे प्रेमी ने प्रेम की वेदी पर अपने अमूल्य जीवन की आहुति देदी। एक आन मे आकिलखाँ के जीवन का चराग़ बुझ गया!

७

इसके पश्चात् राजकुमारी को संसार से बिलकुल विरक्ति हो गई। मन सांसारिक सुखों से हटकर वैराग्य की ओर खिंचने लगा। उनका किसी कार्य मे जी न लगता था, और न किसी से बोलने को दिल करता था। उनका चिर-विहँसित मुख-कमल सदैव के लिए मुरझा गया था।

ज़ेबुन्निसा के अन्तिम दिन बड़े ही दुःख में बीते। वृद्धावस्था मे सम्राट् औरङ्गज़ेब ख़ुद अपनी सन्तान पर बात-बात मे अविश्वास करने लगे थे। जब उनका शहज़ादा अकबर राजपूतो से मिलकर मुग़लिया सलतनत के विरुद्ध मेवाड़ मे विद्रोह फैला रहा था, तब राजनीतिक कारणो से सम्राट ने राजकुमारी को सलीमगढ़ के क़िले मे क़ैद कर दिया। सम्राट् का खयाल था कि ज़ेबुन्निसा शहज़ादा अकबर से मिलकर राज्य का सारा भेद राजपूतों को पहुँचा रही है। दूसरे कई लोगो का कहना है कि इस समय राजकुमारी का अनुराग मराठा सरदार महाराज शिवाजी से होगया था। सम्राट् ने केवल इसी आशंका से ज़ेबुन्निसा को क़ैद कर दिया था। सलीमगढ़ मे क़ैद रहकर राजकुमारी ने मर्म-भेदी कविताओं की रचना की। उन दिनो की प्रत्येक कविता को पढ़ कर पाठकों के नेत्र आँसुओं से भरे बग़ैर नही रह सकते। राजकुमारी के हृदय पर संसार की असारता, जीवन की कठिनाइयों तथा सांसारिक वस्तुओं की कृत्रिमता सम्पूर्णतया अंकित हो चुकी थी। यही भाव राजकुमारी के उस समय के काव्य में पाये जाते हैं।

एक स्थान पर उन्होने इस भाव की रचना की है—

"जब तक मेरे पाँव ज़ंजीर से जकड़े है, मेरे मित्र मेरे शत्रु बने है तथा मेरे बन्धु मुझसे अपरिचित है और मुझे वदनाम करने पर उतारू है, तब तक मुझे अपने नाम और ख्याति की कोई परवाह नहीं। जेल से छुटकारा पाने की चिन्ता करना व्यर्थ है। मजनूँ की क़ब्र से भी मेरे कानो मे यही आवाज़ आती है कि लैला! प्रेम के कैदी को क़ब्र मे भी चैन नही। मेरा समस्त जीवन व्यतीत होगया, परन्तु शोक, पश्चात्ताप और निरन्तर रुदन के अतिरिक्त शेप कुछ प्राप्त नहीं हुआ।

राजकुमारी ज़ेबुन्निसा के काव्य मे उच्च भावनाओ और कोमल कल्पनाओ के साथ रचना मे शब्द-सौष्ठव खूब है। उपमाओ तथा उत्प्रेक्षाओ की भरमार ने नाजुक-खयालियो से मिलकर रत्न-जटित आभूषण की भाँति उनके काव्य को जगमग बना दिया है। राजकुमारी यद्यपि स्त्री थी, परन्तु कविता मे फारसी के अच्छे-अच्छे उस्तादो से बढ़ कर नाम पैदा कर गई। राजकुमारी का एक-एक शेर प्रतिभा और अनुभूति से भरा हुआ है।

उनके प्रारम्भकालीन काव्य मे यौवन की उमङ्गे, मधुर मिलन की लालसाये, और शृङ्गार-रस की प्रचुरता पाई जाती है। उपरान्त की कविताओ मे प्रेयसि की निठुरता, नियति की क्रूरता, जगत की अस्थिरता, मानव की छलना, साक़ी की बेरुख़ी इत्यादि-इत्यादि की झलक दीख पड़ती है।

राजकुमारी के काव्य में भग[illegible] वस्तुओं से, प्रकृति की अनन्त रूप-राशि से प्रेम ही परिलक्षित है। इस मधुर विश्व की नायिका का रूप तो सुन्दर है, परन्तु हृदय कठोर। अपनी निठुरता और उपेक्षा का ढोंग रचकर वह अपने प्रेमी को आठ-आठ आँसू रुलाना खूब जानती है। घोर निराशा की स्थिति में जब प्रेमी अपने प्राणों की बलि देने को उद्यत हो जाता है तो नायिका अपने सौन्दर्य की झलक दिखाकर उसे पुनः जीवित कर लेती है। प्रेमी के लिए उसकी प्रेयसी एक पहेली होती है, जिसकी सुलझन—सुखद-सम्मिलन—की आशा में वह निरन्तर हर्ष-विषाद के सागर में डूबता-उतराता रहता है। किसी उर्दू कवि ने अपनी नायिका का नख-शिख इस प्रकार बतलाया है—

कमर धोका दहन उक़दा, ग़िज़ाल[१] आँखे परी चेहरा,
शिकम हीरा, बदन खुशबू जिर्बार दरिया, ज़ुबाँ ईसा।

राजकुमारी जेबुन्निसा की कविता में धर्म को कोई विशेष स्थान नहीं। सम्राट् अकबर की भाँति हिन्दू, मुसलमान आदि सभी उनकी दृष्टि में समान हैं। अपने काव्य में एक स्थान पर उन्होंने लिखा है—

बुत परस्तानेम बाइस्लाम मारा कार नेस्त,
गैर तारे ज़ुल्फे मारा रिश्त-ए-ज़ुन्नार नेस्त।

मैं मुसलमान नहीं हूँ। मैं तो मूर्ति-पूजक अर्थात् प्रेम-

१—हिरन का बच्चा। २—भाग: पेशानी।

पुजारिन हूँ। मै हिन्दू भी नही हूँ, क्योकि मुझे यज्ञोपवीत से सरोकार नही। मेरे लिए तो मेरी गर्दन मे पड़े हुए मेरे प्रियतम की .जुल्फो के बाल ही जनेऊ हैं। कवियित्री का तात्पर्य यह कि उसे किसी धर्म-विशेष से कोई वास्ता नही; वह तो प्रेम-पंथ की पथिका है। ऐसे ही विचार कई उर्दू कवियो ने भी प्रकट किये है। एक कवि कहता है--

मेरी मिल्लत है मुहब्बत मेरा मजहब इश्क़ है,
ख्वाह मै हूँ काफिरो मे, ख्वाह दीदारो मे हूँ।

महाकवि अकबर ने अपने विचारो को यो प्रकट किया है—

हूँ मै परवाना वहाँ रौशन जहाँ पर भेद हो,
शमा-वहदत चाहिये क़ुरआन हो या वेद हो।

× × × ×

आता है वज्द मुझ को हर दीन की अदा पर,
मसजिद मे नाचता हूँ नाक़ूस[1] की सदा पर।

एक और शाइर की भी सुनिये—

आशिक को इम्तियाजे-दैरो[2] काबा कुछ नहीं,
उसका नक़शे-पा जहाँ देखा वहाँ सर रख दिया।

गालिब साहब इन सबसे आगे बढ़कर कहते है—

हम मुवहिद है हमारा केश है तर्के-रसूम,
मिल्लते जब मिट गई अजजा-इ-ईमाँ होगई।

जेबुन्निसा कभी मसजिद मे मन्दिर को ढूँढ़ती है। कभी

१—शंख। २—मन्दिर।

कहती है कि यदि क़यामत (महा प्रलय) के दिन हम अपने साथ अपने काफिर साथियो को न लाये तो परमात्मा के सन्मुख अपनी मुसलमानियत को कैसे प्रमाणित कर सकेंगे ? उनके काव्य मे कई स्थानों पर पीर-पूजन का भी उल्लेख आया है; किन्तु उनका 'पीर' है गुरु, जो नर का नारायण से साक्षात्कार करता है, और जिसकी शिक्षा और आदेशानुसार हम भगवान तक पहुँचने का साधन जुटा सकते है।

ज़ेबुन्निसा बेगम ने आजन्म अविवाहिता रहकर सन् ११०० हिजरी तदनुसार सन् १६८६ ई० में शरीर-त्याग किया। शहज़ादी ज़ेबुन्निसा के सम्राट्-कुमारी होते हुए भी आजन्म अविवाहिता रहने के सम्बन्ध मे उर्दू फारसी के अनेक लेखकों ने अपने मत प्रकट किये है। कई ने तो उनकी कड़ी आलोचना तक कर डाली है। साधारणतया शहज़ादी के अविवाहिता रहने के दो कारण बताये जाते हैं; एक तो दारा के पुत्र सुलेमान शिकोह की आकस्मिक मृत्यु, दूसरे अपनी विवाहिता बहन की प्रसव-पीड़ा का साक्षात् दृश्य। सुलेमान की सगाई बचपन में ही शहज़ादी ज़ेबुन्निसा से ठहर चुकी थी, मगर निकाह होने से पूर्व ही वह राजनीति का शिकार बनकर मारा गया। सुलेमान की मृत्यु का राजकुमारी ज़ेबुन्निसा पर गहरा असर पड़ा। उन्होंने आजन्म अविवाहिता रहने की प्रतिज्ञा करली। साथ ही उन्होंने अपनी बहन के बच्चा होते समय के कष्टो को भी अपनी आँखों देखा। उन्होंने सोचा कि जिस प्रेम और विवाह के लिये

हम इतने व्यग्र और उत्सुक रहते है उसका अन्तिम परिणाम इतना कष्ट और वेदनामय। उन्हे विवाहित जीवन से विरति होगई। शहजादी जेबुन्निसा के कुमारी रहने का एक विशेष कारण यह भी था कि उनका हृदय कवि-सुलभ कोमल भावनाओ से ओत-प्रोत था, इसी कारण काव्य-साहित्य-विनोद मे वह सदैव निमग्न रही। वह साधारण स्वभाव वाले किसी व्यक्ति से विवाह करके अपना काव्यमय जीवन नष्ट करना नही चाहती थी। इसके अतिरिक्त उनकी जोड का कोई साहित्यानुरागी कवि भी उन्हे न मिल सका, जिसे वह अपना हृदय प्रदान कर सकती।

राजकुमारी जेबुन्निसा इस संसार मे नही है, परन्तु उनकी काव्य-लहरी अब भी आकाश मे गूँजती हुई सुनाई देती है। जेबुन्निसा की मृत्यु पर एक कवि ने लिखा है—

आह जेबुन्निसा बहुक्मे क़जा, नागहाँ अज निगाह मख़्फी शुद,
मंबये इल्मो-फजल, हुस्नो-जमाल, हमचु यूसुफ बचाह मखफी शुद;
सालो-तारीख अज ख़िरद जुस्तम गुफ्त हातिफ कि माह मखफी शुद॥

अफसोस, जेबुन्निसा मृत्यु के अनुशासन-स्वरूप सहसा दृष्टि से छिप गई। वह विद्या, वैभव, सौन्दर्य तथा प्रेम का आगार थी। किन्तु यूसुफ की भाँति हमारी आँखो से कुएँ की ओझल होगई। बुद्धि से जो मैंने उनके मरने की तारीख पूछी तो नियति ने उत्तर दिया कि चन्द्रमा अस्त होगया! विख्यात

कवि जे० वेस्टब्रुक ने भी ज़ेबुन्निसा के मक़बरे पर कितने मार्मिक पद लिखे हैं—

"Thy pleasance princess now is desolate
Where once the gleaming water courses traced.
Their paths among the cypresses, a waste
Stretches beyond thy ruined garden gate.
The Rose is dead the Bulbul flown away
And Zeb-un-nisa a memory"

राजकुमारी ! तेरा क्रीड़ा भवन, जहाँ कि कभी चमकते हुए जल-प्रवाह सर्व के पेड़ो मे होकर अपना मार्ग बनाते थे अब वीरान हो गया है। तेरे उजड़े हुए बाग़ के उस पार बीहड़ पड़ा हुआ है। गुलाब मुरझा गये हैं, और बुलबुल उड़ गई है और जेबुन्निसा की स्मृति-मात्र अवशेष रह गई है। किसी अज्ञात कवि के शब्दो मे—

"मिटनेवाला मिट गया तूने तो देखा ही नहो !"

उस नीरव भग्न समाधि के समीप खड़े होकर आज भी कवि-हृदय विचलित हो उठते है। उनके भाव सजग होकर भारत की इस रमणी-रत्न के लिये श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने लगते है। हम भी अपने टूटे-फूटे शब्दो मे उस मुग़ल-वैभव की प्रतिमा, भावो की ज्योति, काव्य-गगन की मयंक राजकुमारी जेबुन्निसा की जीर्ण किन्तु भावमयी समाधि पर अपने दो फूल चढ़ाते है—

(१)

जिन नयनो की विपुल नीलिमा—
मे थीं मृदु मादक हाला ।
जाने कितने उर-सम्पुट मे,
जिनने था आसव ढाला ॥
जिनकी एक सरस चितवन ने,
कितने अंतर मथ डाले ।
पागल बना प्रणय-तृष्णा से,
सैकत भार बना डाले ॥

(२)

स्वर्णिम तनिमा मे पल्लव से
जिनके पतले-पतले होठ ।
सुषमा से निर्मित कितने ही,
उर मे पहुँचाते थे चोट ॥
जिनकी सरल हँसी से कितने—
बनते मिटते थे संसार ।
जिनकी शशि-सुषमा पी-पीकर
खाता मन-चकोर अंगार ॥

(३)

अविकल, कल जिनके निर्झर से
बहते थे करुणामय बोल ।
जो आवेगो से छलकाती—
थी कितने आँसू अनमोल ॥

तुहिन-बिन्दु-सा तरल सरल जो,
कभी लुटाती थी अनुराग।
जग उठते थे कितनों ही के,
जिससे सोए हुए सुहाग॥

(४)

वही! वही! वह राजकुमारी!
सोई इन पाषाणो मे।
देखो! किरण न उन्हे जगाना!
ठेस न पहुँचे प्राणो में॥
मैं भी धीरे-धीरे इनको
अपना राग सुनाऊँगा।
अमर सुप्ति की मर पीड़ा को—
गाकर अमर बनाऊँगा॥

(५)

सोओ! पीड़ा के मधुवन की
कलियो पर मरनेवाली!
जीनेवाली बहुत, कहाँ है
पर जीकर मरनेवाली!!
जीवन, मृत्यु, अमरता, मरता
निहित तुम्हारी पलको मे।
खेल रही है सभी सम्मिलित
अंतर की रत रलको मे॥

—"उमेश" भार्गव

काव्य-कला

ज़ेबुन्निसा की काव्य-कला

निअ़मत अलीख़ाँ ज़ेबुन्निसा का समकालीन एक अच्छा कवि था। एक समय, बुरे दिनो के फेर मे पड़कर, वह बहुत निर्धन होगया। उसे कुछ रुपयो की ज़रूरत पड़ी। बहुत सोच विचार के बाद उसने अपनी कामदार टोपी भेट-स्वरूप शहज़ादी ज़ेबुन्निसा की सेवा मे भेजी। आन्तरिक मतलब उसका राजकुमारी से धन माँगने का था। टोपी भेजे बहुत दिन बीत गए मगर शहज़ादी की ओर से कोई उत्तर न मिला। निअ़मत अ़लीखाँ ने कुछ दिनो तक तो सन्तोषपूर्वक प्रतीक्षा की, परन्तु काफी दिनो तक कुछ मतलब न हल होते देख उसने यह पद राजकुमारी को लिख भेजा—

ऐ बन्दगियत सआ़दत अख़्तरे मन !
दर ख़िदमते तो अयाँ शुद जौहरे मन !

गर जीफ खरीदनी अस्त पस गो जरे मन,
वरनेस्त खरीदनी विजन बरसरे मन।

ऐ राजकुमारी, तेरी सेवा करना मेरे भाग्य की निशानी है। तेरी सेवा मे ही मेरी योग्यता लोगो पर विदित हुई है। अगर मेरी कामदार टोपी खरीदनी चाहती हो, तो मुझे उसके बदले में आवश्यकतानुसार कुछ द्रव्य दान मे दो, वरना टोपी मेरे सर पर मार दो। राजकुमारी यह पद पढ़कर फड़क उठी और तुरन्त अपने खजाने से ५००) वतौर पुरस्कार भिजवा दिए।

× × × ×

इरादतफहम नामक राजकुमारी की एक ख़ास दासी थी, जो राजकुमारी की संगत में रहकर खुद भी एक अच्छी कवि-यित्री वनगई थी। एक दिन जब राजकुमारी की तबीअत कुछ अनमनी हुई तो दिल वहलाने के लिये उन्होने इरादतफहम से कहा, जा, अन्दर के कमरे से मेरी बयाज (कविता की नोटबुक, किताब) ले आ। इरादत फहम जब बयाज लेकर लौटी तो संगमरमर के फव्वारे के पास उसका पैर फिसल गया। गिरती-गिरती उसने खुद को तो सॅभाल लिया, परन्तु हाथ से बयाज़ हौज मे गिर गई। दासी घबराई कि कदाचित राजकुमारी अब मुझे जीवत न छोड़ेगी। डरती-डरती वह जेबुन्निसा के पास आई और खामोश होकर खड़ी होगई। जब शहजादी ने किताब ले आने की बाबत दरियाफ्त किया तो इरादत ने हाथ बाँध कर अर्ज किया—

आँ बयाज़े खास-ए-शाही कि दर अतराफे आँ
जाए अफशाँ नुक़ता-हाये-इन्तख़ाब उफ्तादा अस्त
दौश अज़ दस्ते इरादत फहम खाकस दर दहन
चूँ बयाज़े-सीनए-माही दर आब उफ़तादा अस्त

हुज़ूर, आपकी शाही बयाज़ जिसके चारो ओर बजाय सुनहरी बुँदकियो के सुन्दर काव्य लिखे हुए थे, इरादत फ़हम के हाथ से (उसके मुँह मे धूल पड़े) मछली के सफेद सीने की भाँति जल मे पलटकर गिर गई। फारस मे जब कोई पुस्तक लिखी जाती थी, तो उसको सुन्दर बनाने के लिए उस पर सुनहरी छींटे डालते थे। मछली का सीना सफेद होता है, अतः पुस्तक पानी मे गिरकर मछलियो से मिल गई। दासी ने अपना क़ुसूर छिपाने के लिये कविता के कोमल भावो की आड़ ली, और वह बच गई। शहज़ादी ने उससे कुछ न कहा, मुस्करा कर ख़ामोश होगई।

× × × ×

को दे दिया था। अतः राजकुमारी उसे जी-जान से रखती थी। दर्पण ले आने के बजाय रौशन राजकुमारी के सामने चुपचाप आ खड़ी हुई। राजकुमारी ने बाल काढ़ते हुए अपना चेहरा देखने के लिये आईना तलब किया। रौशन जवाब देती तो क्या ? आईना टूट चुका था। किन्तु उत्तर देना जरूरी था। सहसा उसके मुँह से निकल पड़ा—

अज क़जा आइन-ए-चीनी शिकस्त'

यानी, चीनी आईने को मौत आ गई, वह टूट गया। अपनी ऐसी प्रिय वस्तु के नष्ट हो जाने पर भी राजकुमारी के माथे पर बल तक न पड़ा। और निम्नलिखित उत्तर देकर वह अपने शृङ्गार मे फिर तल्लीन होगई—

'खूब शुद सामान-ए-खुद-बीनी शिकस्त।'

अच्छा ही हुआ जो अपने (रूप-रंग) को देखते रहने का सामान जाता रहा। दर्पण ही एक ऐसी वस्तु है, जिसमे मनुष्य वाह्य रूप स्पष्ट देखकर उस पर घमण्ड करने लगता है।

× × × ×

एक दिन प्रात काल का मनोरम समय था। शीतल मन्द सुगन्ध समीर सुन्दरियो के हास-विलास को द्विगुणित कर रही थी। कही किसी नवयौवना के नागिन जैसे काले बाल लहरा-लहरा कर उसके मुख-मयङ्क से खेल रहे थे। कहीं किसी सुन्दरी की धानी चुनरी उड़-उड़ कर यौवन की छटा बखेर रही थी। ठीक ऐसे सुहावने समय मे राजकुमारी जेबुन्निसा अपने

बाग़ मे टहलती हुई शीतल समीर का आनन्द ले रही थी। साथ मे उसके एक अमानी नामक दासी थी। उपवन की सुरभित समीर दोनो के हृदय को प्रफुल्लित कर रही थी। किसी क्यारी से गुलाब के कटोरे जैसे बड़े-बड़े पुष्प खिले थे। कही चमेली और किसी कोने मे खड़ी चम्पा अपनी चढ़ती जवानी पर इठला रही थी। प्रकृति के इस निर्मुक्त वातावरण मे राजकुमारी के हृदय मे भॉति-भॉति की विचार-लहरी उठ रही थी। टहलते-टहलते जब वह फव्वारे के पास पहुॅची तो एक लाल गुलाब का फूल गर्दन झुका कर हँस पड़ा। ज़ेबुन्निसा ने अमानी को सम्बोधित करते हुए पूछा—

ऐ अमानी ! गुले-सद-बर्ग चरा मी खन्दद

अरी अमानी, बता तो यह सौ पंखड़ियोंवाला गुलाब क्यो हॅस रहा है ? अमानी को भी काव्य-देवी का इष्ट था। वह कब मुॅह की खानेवाली थी। उत्तर में तुरन्त उसने निवेदन किया—

बर बक़ा-ए-खुदो बर गफ़लते-मा मी ख़न्दद

सरकार, फूल अपने क्षण-भंगुर जीवन की याद करके और हमारी भूल पर (कि हम अपने जीवन की नश्वरता पर कुछ भी ध्यान नहीं देते) हँस रहा है। दासी का जवाब सुनकर राजकुमारी ऐसी प्रसन्न हुई कि अमानी का मुख चूम लिया, और इनाम से उसे मालामाल कर दिया।

× × × ×

एक वार मुशाइरे (कवि-सम्मेलन) मे निम्न समस्या पर कवितायें पढ़ी जानेवाली थीं—

'सवा रा शर्म मी आयद बरूए-गुल निगाह करदन'

अर्थात् वायु को गुलाब पर नजर डालने के लिए लज्जा आनी चाहिये। यह केवल कविता की एक उडान है। गुलाब इतना नाजुक पुष्प है कि वह वायु के स्पर्श से भी कुम्हला जाता है, अतः उस पर नजर डालने के लिये वायु को शरमाना चाहिये। दरबार के अच्छे-अच्छे कवियो ने इस पर पद (बन्द) पढ़े, परन्तु सबकी रचनाये फीकी रही। राजकुमारी ने भी इस समस्या की पूर्ति की, और सारी महफिल को फड़का दिया। उन्होंने पद-पूर्ति की—

कि रख्त गु'चारा वा कर्द नतवानस्त तै करदन।

वायु को पुष्प पर निगाह डालने के लिये इस कारण लज्जा आनी चाहिये कि उसने गुलाब की कलियो को खोल तो डाला परन्तु अब उनको समेट नहीं सकती। अर्थात् कली की पंखडियाँ वायु लगने से खुल तो जाती है, मगर फिर बन्द नही हो सकतीं। जब कली खिल कर फूल बन गई तो वह एक दिन अवश्य मुरझायगी, यानी वायु के कारण ही उसकी मृत्यु होगी।

× × × ×

किसी अन्य मुशाइरे के अवसर पर अबलक़ मोती पर झगड़ा हो रहा था। उपमाओ पर उपमाये और उत्प्रेक्षाओ पर उत्प्रेक्षायें ढूंढी जा रही थीं, परन्तु कोई उपमा ठीक नहीं बैठ

रही थी। राजकुमारी ने अपना पद कहकर सबको लाजवाब कर दिया। पहला पद था—

दुरे अबलक़ कसे कम दीद मौजूद,

अबलक़ मोती (एक़ प्रकार का बेशक़ीमती बड़ा मोती) की उपस्थिति कदाचित ही किसी ने देखी हो। राजकुमारी ने इस पर पद जोड़ा—

मगर अश्के बुताने सुरमा-आलूद।

यानी, अगर देखी होगी तो केवल प्रेयसि की कजरीली आँखो ने, उनसे आँसू निकलते समय ही।

× × × ×

राजकुमारी जेबुन्निसा एक दिन संध्या समय कल-कल निनादिनी कालिन्दी (यमुना) के तट पर बैठी जलविहार कर रही थी। सुरभित सान्ध्य समीर राजकुमारी के हृदय को आन्दोलित कर रहा था। पश्चिम मे चन्द्रदेव अपनी चढ़ती कला से उदय हो कर खिलखिलाने लगे थे। शाही उपवनो मे अठखेलियाँ करनेवाला सुगन्धित पवन प्राणियो को मद-मस्त बना रहा था। ऐसे मनोरम-मनोरंजक अवसर पर शहज़ादी का हृदय नाच उठा। झूम-झूम कर वह गाने लगी—

चहार चीज़ ,ज़े दिल ग़म-बुरद कु-दाम चहार,

शराब सब्ज़ा-ओ-आबे-रवानो बरू-ए-निगार।

अर्थात् इस जग के कोने मे केवल चार वस्तुएँ शान्तिदायिनी है—मधु, हरित छटा, कलकलवाही जल, प्रिय मुख-शशि की

कोमल चाँदनी। क्या नाजुक ख्याली है! सुखमय यौवनपूर्ण जीवन की कितनी सुन्दर झाँकी है! हमारे हिन्दी कवि ने भी तो ऐसा ही कुछ कह डाला है—

हरित छटा हो, सरिता तट पर कल-कल करता पानी हो।
मधुप्याला हो और गोद मे लेटी मेरी रानी हो॥

राजकुमारी अभी यह गा ही रही थी कि अकस्मात् सम्राट् औरंगजेब को उधर से आता देखकर वह एकदम सहम गई। भय के मारे उसका शरीर काँपने लगा। ज़ेबुन्निसा अपने पिता की कला-शून्य प्रकृति और शुष्क मनोभाव से भलीभाँति परिचित थी। परन्तु साथ ही वह थी बड़ी चतुर और बुद्धिमती। तुरन्त अपने को सँभाला और पूर्व शब्दावली को बदल कर उसे यूँ गुनगुनाने लगी—

चहार चीज ज़े दिल गम-बुरद कुदाम चहार,
नमाज रोज-ओ-तसबीहो-तोबा इस्तगफार।

यानी—चार चीजे मन के दुःख को मिटानेवाली है—नमाज, (प्रार्थना) रोजा (उपवास), तसबोह (माला) फेरना, जप, तोबा (प्रायश्चित्त; पश्चात्ताप) और इस्तगफार (विषयो से विरक्ति)।

सम्राट् औरङ्गजेब बड़े कट्टर मुसलमान थे। वह रोज़ नमाज पढ़ते थे तथा अल्लाह् के नामकी रोज माला फेरते थे। अपनी प्रिय पुत्री के मुख से इस प्रकार, इसलाम के अनुकूल, भक्ति-भावना की चर्चा सुनकर उन्हे बड़ी सन्तुष्टि हुई। पद मे संक्षिप्त रूप से धार्मिक विचारो को कैसी सुन्दरता से

निभाया है, यह विचार कर सम्राट् के कभी न हँसनेवाले होठों पर भी मुसकान की लहर दौड़ गई। ज़ेबुन्निसा की मनोभावना पर वह मन-ही-मन मुग्ध होउठे।

× × × ×

एक बार ज़नाने बाग़ में शहज़ादी ने नरगिस का एक फूल तोड़कर अपने बालों में गूँथ लिया। इस पर एक मनचली खवास ने यह शैर कह डाला—

नरगिस ज़दा बर सर व अज़ शौक़े तो नरगिस,
खम करदा रुखे खेयश कि रुख़सारे तो बीनद।

राजकुमारी, आपने नरगिस के फूल को सर से लगाकर उसे व्याकुल करदिया है। वह तुम्हारे गुलाबी कपोलों का दर्शन करने के लिये अपना मुख नीचे झुकाये देख रहा है। नरगिस का फूल नीचे की ओर झुका रहता है। राजकुमारी का मुख देखने से अर्थ है दोनो के रूप की तुलना। अतः नरगिस राजकुमारी का मुख देखकर यह अनुमान करना चाहता है कि मैं अधिक सुन्दर हूँ अथवा राजकुमारी का मुख-मण्डल। ज़ेबुन्निसा बाँदी का ऐसा कटाक्ष सुनकर कब चुप रहनेवाली थी। उन्होने भी वहीं उत्तर दिया—

ईं न नरगिस कि तू दीदी बसरम दिलबरे मन,
ब तमाशा-ए-तो बेरूँ शुदा चश्म अज़ सरे मन।

मेरी प्यारी खवास, मेरे सर पर जो तूने फूल देखा है वह

नरगिस का फूल नहीं है; वह तो मेरी आँख है. जो सर पर चढ़कर तेरा तमाशा देखना चाहती है।

उर्दू-फ़ारसी कवि आँख की उपमा नरगिस से देते है, क्योंकि लजीली आँखो की भाँति नरगिस का फूल भी सदा झुका रहता है। नरगिस अर्थात् राजकुमारी की आँख उनके सर पर चढ़ कर खवास का तमाशा देख रही है! खवास राजकुमारी के मुख से आशु उत्तर पाकर लज्जित होगई।

× × × ×

एक बार शहज़ादी ने काव्य-तरङ्ग मे लाहोर के नाज़िम आक़िलख़ाँ को यह पद लिख भेजा—

> गरचे मन लैला असासम दिल चूँ मजनूँ दर हवास्त,
> सर बसहरा मी जनम लेकिन हया जजीर पास्त।

यद्यपि मै लैला की भाँति स्त्री हूँ और लज्जा मेरा भूषण है, परन्तु मेरा हृदय मजनूँ (लैला के प्रेमी) की तरह स्वतन्त्र और पागल बनकर रहना चाहता है। अत. जगलों मे मै प्रेम की खोज मे अपना सर फोड़ती फिरती हूँ, अर्थात् पागलो की तरह आवारा फिरती हूँ। किन्तु हर समय लज्जा की शृङ्खला मेरे पाँव जकड़ लेती है। सारांश यह कि मेरे पास पागल हृदय तो है, किन्तु मै स्त्री हूँ, और लज्जा मेरा गुण है, मै मरदों की भाँति बिलकुल निर्लज्ज नहीं हूँ।

जो दासी आक़िलख़ाँ के पास यह पर्चा लेकर गई थी, उसी

को काग़ज़ की पीठ पर यह उत्तर लिखकर आक़िलखॉ ने वापस कर दिया—

इश्क़ ता ख़ामस्त बाशद बस्त-ए-नामूसो नंग,
पुख्ता मग़ज़ाने जनूँरा कै हया जंजीर पास्त।

प्रेम जब तक कच्चा (अपूर्ण) है, तब तक उसमें इज़्ज़त आबरू बँधी रहती है; उसे लोक-लाज का भय रहता है। लज्जा प्रेम के सच्चे पुजारियों के पाँव नहीं जकड़ सकती।

उत्तर मे शहज़ादी आक़िलख़ाँ के ऐसे असंयमित भाव को कब सहन करनेवाली थी। उसने तत्काल प्रत्युत्तर देकर आक़िलखॉ को शालीनता का पाठ पढ़ाया—

पाकबाज़ाने-मुहब्बत रा हया बाशद मुदाम,
चूँ तो मुर्ग़े-बेहयारा कै हया ज़ंजीर पास्त।

सच्चे प्रेमी को तो सदा लज्जा करनी चाहिये; घुट कर मर जाना, परन्तु मुँह से उफ् न निकालना, यही तो वास्तविक प्रेमी का लक्षण है। तुझ जैसे निर्लज्ज पक्षी के पॉवों मे शर्म कब ज़ंजीर डाल सकती है। अर्थात् तुझ जैसे प्रेमी शायद लज्जा न करे, वरना लज्जा तो प्रेमियो का आभूषण है।

× × × ×

जिस समय ज़ेबुन्निसा बेगम सलीमगढ़ के किले मे क़ैद थी, उस समय उसकी कविता का ढंग बिलकुल बदल चुका था। काव्य की सब चुलबुलाहट चली गई थी और उसका स्थान विरक्ति, निराशा और शोक ने लेलिया था। क़ैदखाने की

अंधकारमयी कोठरी मे जब कभी उनका जी घबरा उठता तो वह स्वरचित काव्य को पढ़कर अपना जी हरा कर लेती थी। क़ैद मे एक दिन उसने यह पद बनाया—

वशिकन्द दस्ते कि खम दर गर्दने-यारे न शुद,
कोर वा चश्मे कि लज्जतगीर दीदारे न शुद।
सद बहार आखिर शुदो हर गुल फिराके जा गिरफ्त,
बुलबुले बागे-दिले मा जेब दस्तारे न शुद।

ऐसे हाथ टूटे हुए भले जिन्होने कभी प्रेमी की गरदन का आलिगन न किया हो। ऐसी आँखे अधी भली, जिनको कभी प्रेमी के दर्शन पाने का सुअवसर प्राप्त न हुआ हो। सैकड़ो वसन्त के मौसम बीत गए, प्रत्येक पुष्प बिछोह-व्यथा मे अपने स्थान से गिर पड़ा, परन्तु मेरे हृदय की अभागिनी बुलबुल किसी की पगड़ी की शोभा न बढा सकी।

वास्तव मे राजकुमारी ने इन चार पंक्तियो मे अपनी समस्त वेदना का चित्र ही खींच दिया है। आरम्भ से ही उनका जीवन कितना दु.खमय और नैराश्यपूर्ण रहा, इसका अनुमान तो पाठको ने पहले ही कर लिया होगा, किन्तु उक्त शेरो मे शहजादी ने स्पष्ट कहा है कि उनके हाथो ने कभी किसी प्रेमी का स्पर्श नहीं किया, उनके नेत्रो ने कभी किसी को जी भर कर नहीं देखा, और न उनका हृदय कभी किसी का सच्चा पुजारी बन सका!

×　　　×　　　×　　　×

शहज़ादी ज़ेबुन्निसा का समकालीन परवेज़ख़ाँ नामक हास्य-रस का एक अच्छा कवि था। जब राजकुमारी के रचे हुए उपर्युक्त पद उसके कानो तक पहुँचे, तो उनमे अपनी एक मनोरंजक शेर जोड़े बिना वह न रह सका। शेर लिखकर उसने किसी प्रकार राजकुमारी के पास पहुँचा दिया—

पीर शुद ज़ेबुन्निसा लेकिन खरीदारे न शुद।

ज़ेबुन्निसा बुड्ढी हो चुकी, लेकिन उसका कोई ख़रीदार (चाहनेवाला) पैदा न हुआ। यानी प्रेम के बाज़ार मे उसका सौन्दर्य ऐसा न था जो उसके दाम उठ सकते!

परवेज़ख़ाँ का शेर पढ़कर वन्दिनी व्यथित राज-बाला के होठो पर एक बार तो मुसकान खेल गई।

× × × ×

शहज़ादी के लड़कपन मे कई उसकी छोटी-छोटी सहेलियाँ जनाने शाही बाग़ मे इकट्ठी थी। राजकुमारी ज़ेबुन्निसा भी उनमे थी। बाग़ की दीवार मे एक छेद था। उसमे लकड़ी डाल कर लड़कियाँ बार-बार "नीमे दरूँ, नीमे बरूँ" (आधी अन्दर, आधी बाहर) कह-कह कर हँस रही थी। इस खेल मे लड़कियाँ इतनी मग्न थीं कि उन्हे सम्राट् शाहजहाँ के आने की खबर तक न हुई। जब वह बिलकुल ही निकट आगये तो ज़ेबुन्निसा दादाजान को घूरते देखकर चौंकी। वह डरी कि हममे से आज बिना सज़ा पाये कोई नही बच सकेगी। किन्तु राजकुमारी अल्हड़पन मे भी बड़ी चतुर थी। बाबा को

सर झुका कर उन्होने अर्ज किया—

अज हैबते शाहेजहाँ लरज़द ज़मीनो-आसमाँ,
अगुश्त हैरत दर दहाँ, नीमे दरूँ, नीमे बरूँ।

सम्राट् शाहजहाँ के आतंक से आकाश और पृथ्वी काँपते हैं, इसी आश्चर्य्य के कारण मुँह मे दी हुई अँगुली आधी भीतर है और आधी बाहर।

राजकुमारी ने कितनी सुन्दरता से इस पद मे 'नीमे दरूँ नीमे बरूँ' को साधा है। सम्राट् शाहजहाँ छोटी-सी राजकुमारी के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और प्यार करते हुए सब लड़कियो को अपने साथ लेगए।

× × × ×

शाही दरबार मे एक दिन एक बाज़ीगर अपने करतब दिखा रहा था। उसके बाद जब उसकी स्त्री का नम्बर आया तो वह एक ऊँचे बाँस पर चढकर कलाबाजियाँ दिखाने लगी। दर्शक उसका तमाशा देखकर मुग्ध होगए। उस समय किसी कवि ने जोर से पढ़ा—

ईं लाबते बुलअजब चूँ माह अस्त,
या ताजा गुल बर शाखे रैना अस्त।

यह विचित्र स्त्री क्या आकाश पर चन्द्रमा की भाँति उदय हुई है या कोई ताजा फूल बनकर हरी डाली पर फूलती नजर आरही है। यहाँ कवि ने बाँस को आकाश और डाल की उपमा दी है, और स्त्री को चन्द्रमा और फूल की समता। तात्पर्य

यह कि नट की स्त्री बाँस पर चढ़कर चन्द्रमा जैसी सुन्दर और पुष्प जैसी मनोरम प्रतीत हो रही है।

राजकुमारी ने भी, जो परदे मे-से यह तमाशा देख रही थी, कवि का शेर सुना और तुरन्त अपना शेर लिख कर उसके पास भिजवा दिया। यह शेर दरबार मे ऊँची आवाज़ से पढ़ा गया, जिसे सुनकर सब दरबारी वाह-वाह कर उठे—

> ने ग़लत अस्त आफताबे-मशहर,
> बर नेज़ा बर आमद ब कयामत बरपास्त !!

कवि तू ने जो अभी नटी की प्रशंसा मे कहा, वह ग़लत है। जो उपमाये तू ने दी, वह झूठी है। वास्तव मे नटनी प्रलय का सूर्य बनकर भाले पर चढ़ गई है और जिससे प्रलय के चिह्न चारो ओर दिखाई दे रहे है!

मुसलमानो का विश्वास है कि क़यामत (प्रलय) के दिन सूर्य आकाश से उत्तर कर केवल एक भाले की दूरी पर रह जायगा। तब सूर्य के भीषण उत्ताप से अखिल ब्रह्माण्ड जल-भुनकर ख़ाक हो जायगा। यहाँ 'नेज़ा' शब्द मे श्लेष है—नेज़ा = भाला, बर्छा; नेज़ा = बाँस, दण्ड। शहज़ादी ने, इस-लामी विश्वास के अनुसार, यहाँ इस उत्प्रेक्षा को क्या ख़ूब निभाया है! उसने स्त्री को सूर्य माना है, जो इतने निकट आकर, दरबारियो के हृदय पर अपने साहस-पूर्ण करतब द्वारा, मानो प्रलय का नाद बजा रही है! दूसरे शब्दो मे राजरमणी

जेबुन्निसा अपनी स्त्री-जाति की महती शक्ति-सम्पन्नता का पूर्ण प्रतिनिधित्व कर रही है !!

× × × ×

पुष्पो के सुन्दर झुरमटो मे राजकुमारी किसी धुन मे एक दिन खड़ी थी। पास मे बुलबुले चहक रही थीं, सहसा उनके कान मे कुछ आहट की आवाज़ पड़ी। मुड़कर जो देखा तो अपने पिता औरंगजेब को खड़ा पाया। राजकुमारी फौरन भोली बनकर यह पद पढ़ने लगी, ताकि सम्राट् उसे सुन सके—

ऐ बुलबुले खुश उलहाँ, आहिस्ता लब ब जुम्बाँ,
नाजुक मिजाज शाहाँ ताबे सखुन न दारन्द।

अर्थात्—

ऐ मधु बुलबुल, मन्द स्वरो मे कह तू अपनी बात !
सह न सकेगे सरल स्वभावी यह नाजुक सम्राट् ॥

ऐ मधु वयनी बुलबुल, ज़रा धीरे-धीरे अपनी चोच खोल; धीमी आवाज मे चहक, क्योकि कोमल स्वभाव राजाओ मे काव्य सुनने की शक्ति नही होती। यह पद कह कर, प्रकारान्तर से, राजकुमारी ने सम्राट् के रूखेपन पर कैसा कटाक्ष किया है ! सम्राट् उसको कुछ भी न समझ सके। उलटे उस समय के मनोरंजक वातावरण मे कहे हुए शेर ने उन पर ऐसा प्रभाव डाला कि उन्होने आकर फौरन राजकुमारी को हृदय से लगा लिया।

———

फ़ारसी काव्य-कला

फ़ारसी काव्य-कला और ज़ेबुन्निसा

राजकुमारी ज़ेबुन्निसा की काव्य-धारा पर विचार करने से पूर्व यह आवश्यक है कि उर्दू काव्य, उसके वातावरण, उसके शृङ्गार और उसके विषयों पर एक विहंगम दृष्टि डाल ली जाय।

मानव सभ्यता का इतिहास युग-युग से यह बताता चला आ रहा है कि मानव जाति अपने उद्भव से ही ललित कलाओं को प्रश्रय देती आई है। जिस दिन हृदय की सृष्टि हुई और मस्तिष्क का विकास आरम्भ हुआ, उसी दिन शायद काव्य-कला एक शिशु के रूप मे अवितरित हुई और युगो से मानव जाति को आह्लादित करती हुई आज भी अपने श्रीसम्पन्न चिर वैभव

और ऐश्वर्य के साथ विश्व मे उपस्थित है। इसके आदि और अन्त की कहानी सम्भवतः मानव जाति के आदि और अंत की ही गाथा होगी।

कला और उपयोगितावाद सम्भवतः दो भिन्न वस्तुऍ हो, किन्तु यह निश्चित है कि काव्य है एक उपयोगी कला। चरित्र, युग और राष्ट्रो के निर्माण-क्रम मे उसका एक विशिष्ट भाग है। यह वह कला है जिसने राज्यो के उत्थान और पतन का इतिहास पुस्तको के पृष्ठो पर नही, मानवजाति के हृदय पर अंकित किया है। अन्य कलाओ मे यह क्षमता नही है। मनोरंजन के साथ-ही-साथ राष्ट्रो की नींव को ठोस अथवा खोखली करती हुई यह काव्य-कला मानव-हृदय का सदैव से कण्ठ-हार रही है।

हिन्दू और मुसलिम सभ्यताओ की नीव स्वभावत इसी काव्य-कला पर निर्धारित है। भारतीय ग्रामो मे हल, खेत और पशु-पालन के गीत गाती हुई काव्य-कला ने ही तो फारस मे जाकर वह पीयूष-तरङ्ग प्रवाहित की, जिसके प्राण आज भी उर्दू काव्य के शरीर मे स्थित मादक काव्य की सृष्टि कर रहे है। फारसी-हिन्दी-मिश्रित परिधान पहने आज के उर्दू के विकास की कहानी का क्षेत्र शायद दिल्ली ही था; इसी कारण उसमे भारतीयता और आत्म-वैभव की छाप अब भी शेष है। किन्तु फिर भी, इतने वर्षों तक फारस और अरब से अलग रहकर, वह उस सभ्यता से विलग नही हो पाई है। वर्तमान उर्दू कविता को समझने के लिए हमे सदियो पूर्व के वातावरण और सभ्यता

को हृदयङ्गम करना होगा। प्रकृति की प्रेरणा और अन्तरतम के उन रहस्यमय भावो को प्रकाश मे लाने का साधन भाषा है, जो बरबस हृदय मे गुदगुदी मचाकर बाहर निकलना चाहते हैं। वातावरण और सभ्यता का प्रभाव इन भावो पर सबसे अधिक पड़ता है। फारस के वातावरण ने अपनी गोदी में पले फारसी भावो को एक ऐसे साँचे मे ढाल दिया है कि विश्लेषण करने पर वे स्वयं फारस के जीवन की, वहाँ के वातावरण की, कहानी कह उठते है।

फारस का महिला समाज उस युग में परदे की चहारदीवारी मे बन्द रहा करता था। स्त्रियाँ समाज की वासना को उत्तेजित नही किया करती थीं। घर के अन्दर रहकर गृह-सञ्चालन-कला में पूर्णता प्राप्त करना और विवाह के पश्चात् पति की आज्ञा-नुसार, झरोको से से झॉकने का भी निषेध पाकर, फारस की युवतियाँ समाज से दूर जा पड़ी थीं। स्त्रियो के अभाव में अल्हड़ कमसिन छोकरे, जो ईरानी समाज के प्राण होगये थे, वैभव और विलास की सामग्री बनने का आयोजन कर रहे थे। पन्द्रह-सोलह वर्ष की आयु, गोरा निखरा हुआ रंग, पतली कमर, घुँघराली ज़ुल्फे, अदादार मदभरी चाल, और हाथ मे मस्ताना बनानेवाली शीराज़ी-शराब—का प्याला लिये पुरुषत्व और वीरता की कालिमा यह छोकरे झूमते हुए फारस के रईसो की महफिलो को जगाया करते थे। पैमाना लिए हुए नज़ाकत भरे वही साक़ी थे और वही परीज़ाद मनचले रईसो के माशूक़।

उनकी एक-एक अदा पर, एक-एक मुसकराहट पर, सारी महफ़िल दीवानी हो पड़ती थी। वह तो थे—

"कि जिनके इंगित पर चुपचाप
निफल पड़ते थे पागल प्राण—"

प्रो० आजाद ने भी तो 'आबेहयात' मे लिखा है कि "रात को अहले मुहब्बत के जल्से में अव्वल तो साक़ी का आना वाजिब है, फिर माशूक बजाय एक नाज़नीन औरत के परीजाद लड़का हो। तभी तो महफिल के एक कोने मे बैठे रईस, पैमाने पर पैमाना ढालते, उस अल्हड़ छोकरे पर फिदा होकर शाइर के मुँह से कहलवा उठते थे—

तेरे लब की सिफत लाले-बदख्शाँ से कहूँगा,
जादू है तेरे नैन ग़िजाला से कहूँगा।
दी हक ने तुझे बादशाही हुस्न नगर की,
यह किश्वरे ईराँ मे सुलेमाँ से कहूँगा।
जख्मी किया है मुझे तेरी पलको की अनी ने,
यह जख्म तेरा खंजरो-भाला से कहूँगा।

और उसी समय एक शराब के प्याले की माँग करते हुए दूसरे कोने से हजरते शाइर फरमा उठते थे—

दिल छोड़कर यार क्योंकर जाये,
जख्मी हो शिकार क्योंकर जाये।
जब तक न मिले शराबे-दीदार,
आँखो का खुमार क्योंकर जाये!

इतना ही नही कोई साहब तो नशे में झूमते-गिरते भी, दिल पर हाथ रखकर, बोल पड़ते थे—

बोसा लबो का देना कहा, कहके फिर गया,
प्याला भरा शराब का अफसोस गिरगया!

और जब प्याले के, मुसकराहट के, बोसो के और अदाओं के एवज़ मे उन माशूक़ो की माँग पूरी करने की नौबत आती थी, तभी रईस कुछ खीझे से और कुछ रीझे से कह उठते थे—

रखे इस लालची लड़के को कोई कब तलक बहला,
चली जाती है फरमाइश कभी यह ला कभी वह ला।

यह थी फारस की छोकरापरस्ती और उसमे शराबोर शाइरी, जिसका प्रभाव उर्दू पर पड़ा है।

युग-परिवर्तन के साथ विचारो ने पलटा खाया और जब नवीन संस्कृति के जोश मे भरे युवक उर्दू-काव्य के इस प्राण पर, सभ्यता के इस दिवालियेपन पर, और ज़नख़ो के नाज़ पर नाक-भो चढ़ाने लगे, तभी हमारे उर्दू शाइरो ने दबी ज़बान से कहा—"यह तो अध्यात्मवाद की कविता है, आशिक़ है मानव-जाति और माशूक़ है वह खुदा परवरदिगार।" किन्तु उस अथाह काव्य-सागर को, जिसे कि उन्हे, अनिच्छा रहते हुए भी छोकरापरस्ती का काव्य कहना पड़ा, जिसे अध्यात्मवाद की आड़ मे वे न छिपासके, देखकर बरबस इश्क़ की दो सूरते पैदा करनी पड़ी—इश्क़ हक़ीक़ी और इश्क़ मजाज़ी। ईश्वर-भक्ति, संसार की नश्वरता, वैराग्य और आत्म-सम्बोधन की कविता

को इश्क़ हकीक़ी कहकर पुकारा गया, और माशूको के नाज़ो-अन्दाज़, कटाक्ष और कटारबाजी को; उनकी निर्ममता, निर्दयता और निर्लज्जता को इश्क़ मजाज़ी। उर्दू-काव्य मे अधिकतर हमें इसी इश्क़-मजाजी के दर्शन करने को मिलते है। हॉ, कही-कहीं इश्क़ हक़ीक़ी भी यदा-कदा दृष्टि मे आजाता है। हिन्दी कविता मे संस्कृति का प्रभाव कहिये अथवा जनवृत्ति की विभिन्नता कि, शृंगार-रस की प्रचुरता होने पर भी, सदैव स्त्री की आसक्ति पुरुप पर बतलाई जाती है। विरहिणी के रूप मे राधा को आप पा सकेगे, किन्तु कृष्ण की आहे देखने को न मिलेगी। उधर अंग्रेज़ी-काव्य मे ओरलेन्डो (Orlando) की विरह-व्यथा और प्रेम की तड़पन सदैव पुरुप की स्त्री पर आसक्ति की ओर इंगित करती है। किन्तु उर्दू मे प्रथम और सम्भवतः अंतिम बार पुरुप की पुरुप पर आसक्ति हुई है। विपय-वासना का यह अप्राकृतिक समावेश प्राणि-शिरोमणि (अशरफुलमखलूकात) मानव की, अपने सहचर पशुओ को भी लजानेवाली, यह कला-कालिमा फारसी की देन है, उर्दू उसे कैसे भुला सकेगी!

नवरस मे यह अनूठा रस, शृङ्गार—पुरुप की पुरुप पर आसक्ति—८० प्रतिशत उर्दू-काव्य में समाया हुआ है, शेप २० प्रतिशत मे शान्ति, करुणा, वीर, वीभत्स का मिश्रण समझिये, जिसमे वीर-रस तो खोजने पर ही मिल सकेगा।

फारसी और उर्दू कविता के इस विचित्र वातावरण मे हमें शाहजादी जेबुन्निसा की कविता का मूल्य ऑकना होगा।

अप्राकृतिक प्रेम को तटस्थ रखकर, फ़ारसी के शाइरों की परम्परा को भूलकर. एक स्त्री-हृदय की झाँकी, जिसमे कोमल भावों का प्रस्फुटन अनूठा और अनुपम है, हमें प्रथम बार राज-कुमारी ज़ेबुन्निसा की कविता में देखने को मिलती है। मुग़लिया दरबार की कूट-राजनीति और षड्यन्त्रों को भूल कर, औरंगज़ेबशाही अविश्वास और आडम्बर को विस्मरण कर, मुग़ल राजप्रसाद के प्रांगण में खेलते उस सजीव कविता-कलाप को, जिसे आज भी साहित्य में अमर स्थान प्राप्त है, हमे हृदयस्थ करना होगा। औरङ्ग्ज़ेब का शासन-काल ललित कलाओं के विनाश और पतन के लिये प्रसिद्ध ही है। इस सम्बन्ध में किंवदन्ती है कि एक बार कुछ कलाविदो ने परामर्श कर बाँस की ठठरी पर घास-फूँस बाँध राजप्रासाद के सामने से, उच्च स्वर में विलाप करते हुए, जनाज़ा निकाला। औरङ्ग्ज़ेब उस करुण विलाप को सुनकर सहसा चोक पड़ा और पूछा कि "कौन मर गया है?" उत्तर मिला, "ललित कलाये।" शुष्क हृदय सम्राट् ने उत्तर दिया, "तो रोनेवालो से कहदो कि उसको इतना गहरा दफनावे कि वह फिर न उठ सके।" यह थी ललित कलाओ के प्रति सम्राट् औरंगज़ेब की सहानुभूति! उसी पिता की पुत्री राजमहल के एक कोने मे बैठी, परिस्थितियो को एक ओर फेक, मुक्त भावो की चिर आनन्दमयी माला गूँथा करती थी। हृदय पर भला किसका ज़ोर। कसक और उसका मूल्य आँकनेवाली उस सजीव कला की देवी पर, उसके कोमल हृदय

पर, भला यह पार्थिव बंधन कैसा ! किन्तु पिता की कविता के प्रति घृणा, पारिवारिक जीवन में उन्मुक्तता पर बंधन और वैभव एवं विलास का वातावरण, इन सबने मिलकर राजकुमारी जेबुन्निसा की कविता मे वह रस, वह माधुरी और वह अनूठापन ला दिया, जिस पर आज भी कलाकारो को अभिमान है। जीवन की कसक और वेदना को अपने मे समेट कर अपने व्यथित प्राण, निर्झर की चिर-प्रवाहिणी करुण-धारो मे उँडेलकर, एक दिन सन्ध्या-वेला मे उदास बैठी राजकुमारी तभी तो गुनगुना उठी थी—

ऐ आवशार नौहागार अज बहरे चीस्ती
चीं वर जिबी फिगंदा ज़ि अन्दोह कीस्ती
आया चि दर्द बूद कि चूँ मा तमाम शव
सर रा बसंग मी ज़दी ओ मी गिरीस्ती ।

अर्थात्— अय निर्झर ! क्यो आज शोक का,
यह तुम पर परिधान पड़ा है ।
माथे पर यह बल कैसे है,
किसके दुख मे आज अड़ा है ॥
मुझ दुखिया की भाँति रात भर
किस निष्ठुर की मधुर याद मे—
पटक-पटक कर सिर पत्थर पर
रोये हो तुम किस विषाद मे !!

एक-एक शब्द में कसक है, वेदना है, जीवन की असीम

व्यथा से प्रभावित होकर उस सुकुमार हृदय ने निराशा का भार ढोकर तड़पन भरे स्वर में स्वयं का विश्लेषण करते हुए कहा था—

रोज़े नौ उमेदी चूँ आयद आशना दुश्मन शवद,
ग़म जुदा शादी जुदा दौलत जुदा दुश्मन शवद।
नेस्त "मख़्फ़ी" दर दिले मा दुश्मनी बा हेच कस,
हर कि बा मा दुश्मन अस्त बा ओ ख़ुदा दुश्मन शवद

अर्थात्—

अरे! निराशा के दिवसों में हाय मित्र भी शत्रु बने हैं।
सुख वैभव विलास जग के सब मुझ दुखिया से आज तने हैं!!
किन्तु नहीं मन मैला मेरा वैर न मुझको अरे! किसी से।
मुझसे वैर भाव जो करते, करुणाकर देखे, अपने हैं!!

राजकुमारी के इन सजीव वेदनापूर्ण भावों की लहर देखकर तो सचमुच यही कहने की इच्छा होती है कि—

"यहाँ हृदयवालों का जमघट पीड़ाओं का मेला है!"

उर्दू और फ़ारसी काल में एक नवीन स्फूर्ति का प्रादुर्भाव राजकुमारी ज़ेबुन्निसा की उत्कट हृदय स्पर्शिनी कविता ने किया। संभव है राजकुमारी के व्यक्तिगत जीवन ने इस करुणा-धारा को बहाया हो। क्योंकि कहीं-कहीं ऐसा संकेत स्पष्ट ही है। पिता के रूक्ष स्वभाव पर फब्तियाँ कसते हुए, वसन्त की बहार में बुलबुल की चहक कुंज वन में सुनकर राजकुमारी ने दबे स्वर में कह भी तो दिया था—

ऐ बुलबुले खुश-इलहाँ आहिस्ता लब बि जुम्बाँ
नाजुक मिजाज शाहाँ ताबे सखुन न दारन्द ।

अर्थात्—

"री मधु बुलबुल मन्द स्वरों में कह तू अपनी बात !
सह न सकेंगे सरल स्वभावी यह नाजुक सम्राट् ॥

करुण-रस के प्रादुर्भाव के अतिरिक्त राजकुमारी जेबुन्निसा की कविता में हमें स्वाभाविक रूप से स्त्री की पुरुष पर आसक्ति, प्रेम एवं प्राकृतिक नायिका प्रेम और उसकी विरह-व्यथा का दर्शन करने को मिलता है—

गम मी कुनद फिजूनी ऐ दोस्तॉ खुदा रा,
शायद निहुफ्ता मानद ई राजे-आशकारा ।
मारा चूॅ मोम बुगुदाख्त ई आतिशे-मुहब्बत
ता चन्द बाशदत दिल दर सीना संग खारा

अर्थात्—

कसक हृदय में बढ़ती जाती,
हे अलि ! ईश्वर दया करे—
तो शायद छिप जाय नहीं तो—
भेद खुल चला, अरे ! हरे ॥
प्रेमानल से पिघल-पिघल कर,
मोम-सदृश मैं अरी बह चली !
तेरा हृदय-वज्र हा ! फिर भी—
कब तक—मेरी बढ़ी बेकली ॥

हिन्दी काव्य-परिपाटी से विज्ञ पाठकों को कवियित्री के हृदय के इन सरल भावों को बाँधना बहुत सरल है, क्योंकि यह उनकी ही वस्तु है। उसी साँचे में ढली हुई है। इस प्रेम की कसक से हमारा हिन्दी काव्य-जगत् भली भाँति परिचित है।

इस प्रकार राजकुमारी ज़ेबुन्निसा की कविता का महत्व, प्रथम तो उस युग का होने के कारण, जब कि पुरुषों के लिये भी कविता लिखना गुनाह समझा जाता था, एवं द्वितीय उर्दू और फ़ारसी के काव्य में एक नवीन मार्ग के प्रदर्शन के कारण, बहुत ही बढ़ जाता है। हम राजकुमारी को अमर साहित्य प्रसविनी के अतिरिक्त युग-प्रवर्तिका कवियित्री भी कह सकते हैं।

काव्य-कुञ्ज

काव्य-कुंज

ग़म मी कुनद फ़िज़ूनी ऐ दोस्ताँ खुदारा,
शायद निहुफ़्ता मानद ईं राज़े-आशकारा।
सारा चूँ मोम बुगुदाख़्त ईं आतिशे-मुहब्बत,
ता चन्द बाशदत दिल दर सीना संग ख़ारा।
कश्ती-ए-उम्र बि शिकस्त दर बहरे नाउमेदी,
मुशकिल कि बाज़ बीनम आँ यारे आशनारा॥
यारों ब बज़्मे इशरत 'मख़्फी' ब कुंजे मेहनत,
बा आफ़ियत चि कारस्त दुरवेशे बे-नवारा।

अर्थात्—

कसक हृदय मे बढ़ती जाती,
हे अलि! ईश्वर दया करे—

तो शायद छिप जाय नहीं तो—
भेद खुल चला अरे ! हरे !!
प्रेमानल से पिघल-पिघल कर,
मोम-सदृश मैं अरे ! बह चली !
तेरा हृदय-वज्र हा ! फिर भी—
कब तक—मेरी बढ़ी बेकली ?
अरे ! निराशा के सागर में,
जीवन-नौका टूट गई है !
अब उनको भर आँख देखलूँ,
कहाँ भाग्य ! गति नियति नई है !!
सुख-विलास में डूबी दुनिया,
दुख-सागर है मुझे दिखाता !
लुटी हुई हूँ, भिक्षुक हूँ मैं,
मेरा सुख से कैसा नाता !!

प्रिय के मधुर अङ्क से बिछुड़ी प्रेम-विरह में दग्ध नायिका कह रही है—अलि ! मेरा दु:ख बढ़ता जा रहा है। ईश्वर के लिये जो भेद मुझे छिपाना चाहिए था, वह अब अधिक समय तक नहीं छिप सकेगा, अर्थात् मेरा प्रेम-रोग अवश्य ही जग में प्रकट होजायगा। इस प्रेम-ज्वाला ने मुझे मोम की भाँति बिलकुल गला दिया है। अब मुझे देखना है कि कब तक तुम्हारा हृदय पाषाण की भाँति कठोर बना रहेगा। निराशा का अथाह सागर है और मेरी जीर्ण जीवन-नौका आज सहसा टूट गई है। मेरा

समस्त जीवन दुःख की एक कहानी बन गया है; अतः मुझे अब यह आशा नही कि प्रियतम से मेरा मिलन हो सकेगा। मेरे मित्र, संगी-साथी सब कोई सुख और ऐश्वर्य मे भूल रहे हैं, और मै आपत्तियो से घिरी हुई हूँ। ठीक ही तो है, फटे हालवाले भिखारी का सुख से क्या नाता !

शहज़ादी की नायिका हमारे हिन्दी काव्य की नायिका से भिन्न नही, जो श्रीमती महादेवी वर्मा के शब्दो मे पूछ रही है—

घोर तम छाया चारो ओर, घटाये घिर आईं घन घोर।
वेग मारुत का है प्रतिकूल, हिले जाते है पर्वत-मूल !
गरजता सागर बारम्बार, कौन पहुँचा देगा उस पार !!

'मख्फी' की नायिका को प्रिय-मिलन की आशा नही है, और तभी तो उसी स्वर-मे-स्वर मिलाकर, निराशा के सागर मे गोते खाती हुई, हमारी कवियित्री की नायिका भी तन्मय होकर कह उठती है—

आशा के भग्न-भवन मे, प्राणो का दीप जलाए।
उत्सुक हो स्वागत-पथ पर, बैठी हूँ ध्यान लगाए !

कैसी चिरन्तन प्रतीक्षा है, जबकि विषाद-भरे स्वर मे राजकुमारी का हृदय, प्रतीक्षा की आशा छोड़कर, बोल उठता है—

"सुख विलास मे डूबी दुनिया,
दुःख-सागर है मुझे दिखाता !"

और उसी चिर प्रतीक्षा मे आशा की एक रेखा देख कर कवियित्री अपने हृदय के अन्तर्तम से गा उठती है—

"दुख की काली कोयलिया,
जीवन–तरु पर आ बोली !
किन अनजाने हाथों ने,
स्मृति–ग्रन्थि आज दे खोली !!"

दोनों मे साम्य भी है और वैषम्य भी। पर दोनों है एक ही पन्थ की पथिकाये। हो भी क्यो न ? आखिर प्रेमनगर मे तो सब कोई एक-सा है। उर्दू के शाइर फैयाज़ साहब ने भी कहा है—

मायूसियों मे डूबी, उम्रेरवाँ की किश्ती !
मुश्किल कि हो मयस्सर अब दोस्त का नज़ारा !!"

× × × ×

बाग़ो बहारो आबेरवाँ ईं खुमार चीस्त,
दिलबर ब काम बादा ब क़फ इन्तज़ार चीस्त।
फ़ुरसत शुमर ग़नीमतो दादे निशात-दिह,
हैरानी-ए-खयाल जि अंजामकार चीस्त ॥
गर खूने दिल ज़ि दीदा न दादश न दाश्ते,
सैलाबे-खूँ जि सीना मरा दर किनार चीस्त।
मख्फी ब कद्रे ताअ़ते मा गर अता कुनद,
दर रोजे-हश्र रहमते-परवरदिगार चीस्त ॥

अर्थात्—

इस मधु ऋतु वन तटिनी-तट पर,
आज उदासी तुझ पर कैसी।

उनकी कृपा-कोर-माला है,
बोल अरे ! फिर देरी कैसी ॥
सुख की घड़ियाँ चार मिलीं जो,
जान बहुत संतोष वरण कर ।
हा ! भविष्य में क्या होना है,
क्यो खलता रहता यह खर शर ॥
अन्तर-तम की व्यथा उमड़ कर,
यदि नयनों मे नहीं समाती ॥
तो फिर—मेरे आँचल मे क्यो,
यह आँसू की माला आती ?
मरने पर मेरी पूजा का—
बदला ही जो मिला मुझे ।
किस दिन काम दया आयेगी,
कैसे कहूँ कृपालु तुझे ?

शहज़ादी ज़ेबुन्निसा की इन पंक्तियो मे कितनी मस्ती है, कितना अल्हड़पन है । बसंत ऋतु है, बाग़ है, बहता हुआ सरिता का शीतल जल है, और इन सबसे परे प्रियतम-कृपा-कोर भी है; अकेली नहीं, मदिरा के प्याले के साथ; किन्तु फिर भी किसी की प्रतीक्षा है, विलम्ब हो रहा है ! भूतल पर स्वर्ग आगया है, ठीक वैसा ही जैसा कि उमर ख़ैयाम ने, एडवर्ड फिट्ज़जैराल्ड के शब्दो मे, वर्णन किया है—

Here with a Loaf of Bread beneath the Bough
A flask of Wine, a Book of Verse—and Thou
Beside me singing in the wilderness—
And Wilderness is paradise enow

एक विचार, रहस्यमय भविष्य की चिन्ता साथ लगी है। राजकुमारी कहती है, थोड़े समय को बहुत जानकर ख़ूब आनन्द लूटना चाहिये, अंत का विचार कर चिन्तित होने से लाभ ही क्या है। 'नवीनजी' के शब्दो मे भी ठीक ऐसाही अनुरोध है—

साक़ी मन-घन-गन घिर आये, उमड़ी श्याम मेघ-माला।
अब कैसा विलम्ब ? तू भी! भर भर ला गहरी गुल्लाला ॥

जीवन का समय बहुत थोड़ा है, जो कुछ आनन्द उसमे लूट सकते हो, लूटलो! दुःखी रहने से कोई लाभ नही। समय का ऐसा ही सदुपयोग करने को तो उमर ख़ैयाम कहता है—

Come, fill the cup, and in the Fire of Spring
The Winter Garment of Repentance fling
The Bird of Time has but a little way
To fly—and Lo! the Bird is on the Wing

यदि तेरे नेत्रो ने मेरे हृदय का रक्त नही पिया तो मेरे नयनो से रक्त की धारा बहकर मेरे वस्त्रो पर कैसे आगई है। मेरे हृदय-देश मे तेरे नेत्रो ने ही तो हलचल उत्पन्न करदी है, जिससे अश्रुकण बिखर पड़े है। 'उपासकजी' के शब्दो मे यही नेत्र इस प्रेम-व्यथा के मूल कारण है—

इन मतवाली आँखों में, जादू-सा पला हुआ है।
सौंदर्य्य-राशि से मानो, जीवन-मधु ढला हुआ है॥

राजकुमारी कहती है— ऐ 'मख़्फी'! यदि हमारी भक्ति और प्रेम के अनुकूल प्रलय के दिन पुरस्कार बाँटे गये और ईश्वर की ओर से मुझे उचित पुरस्कार ही मिला, तो आपकी दयालुता ही क्या रही। आपको कृपालु सम्बोधन करने से मुझे लाभ ही क्या हुआ!

× × ×

कारे माशूक़ाँ नमक बर ज़ख़्मे पिनहाँ रेख़्तन्।
कारे आशिक़ ख़ूने ख़ुद बर पाए जानाँ रेख़्तन्॥
गर निहादम दाग़े-इश्क़त बर जिगर माज़ूरदार।
बाग़बाँ रा मी रसद गुल दर गरेबाँ रेख़्तन्॥
दीद-ए-ख़ुद वर कुशा मख़्फी दिगर ताके तवाँ।
नक़्द उम्रे ख़ेश रा हर सू परेशाँ रेख़्तन्॥

प्रेयसि! तेरा काम जलाना,
नमक छिड़कना जले हुए पर।
पर तेरे चरणों पर मरना,
है मुझको यह काम सुगमतर।
आज तुम्हारा प्रेम-चिह्न जो—
मेरे उर में पीर जगाता।
फूल चयन कर माली भी तो,
अपनी झोली में भर लाता।

रे! अब तो टुक चेत, भला—
कब तक खोयेगी जीवन-धन!
कब तक जीवन की डोरी मे,
पड़ी रहेगी यह उलझन!!

विरह-व्यथा मे आकुल कवियित्री की अनुभूति कितने सुन्दर रूप मे प्रस्फुटित हुई है। प्रेमी के एक इंगित पर अच्छे-अच्छो की दुनिया बदल जाती है। यह वह है

"—कि जिनके इंगित पर चुपचाप;
मचल पड़ते हैं पागल प्राण!"

वही निष्ठुर, निर्मम, बेदर्दी से गुप्त जख्मो पर बस बैठे-बैठे नमक डाला करते है, और उनके दीवाने आशिक़ (प्रेमी), व्यथा से पीड़ित होकर भी, सदैव अपने प्राण उन पर निछावर करने को तैयार रहते है। उनकी इच्छा तो केवल यही रहती है कि—

"इंगित पर मर मिट जाना
इंगित पर पागल होना।"

यदि तेरे प्रेम का दाग मैंने अपने हृदय पर लिया है तो कोई चिन्ता नही, क्योकि माली को अपनी झोली मे फूल एकत्रित करना ही शोभा देता है। फल और जख्म का रंग यक-साँ होता है, माली और प्रेमी की एवं झोली और हृदय की उपमायें है। सारांश यह कि मैंने तुमसे प्रेम किया तो कोई अनुचित बात नही की, क्योकि ऐसा करना मुझे शोभा देता है। 'मख्फी', अपनी आँख खोल! क्योकि तू अपने अमूल्य जीवन को कब

तक व्यर्थ खोती रहेगी। मन और जीवन मे तुझे समन्वय करना ही होगा।

× × ×

तो अगर अज नाज़े माशूक़ी मै अन्दर जाम ख़्वाही कर्द।
जहानेरा ब आशिक़ पेशगी बदनाम ख़्वाही कर्द॥
कमन्दे ज़ुल्फ़ गर दामस्त ईं ख़ाले सिया दाना।
बसे मुर्ग़-दिलो जॉ रा असीरे दाम ख़्वाही कर्द॥
ग़मे महजूरी-ओ दूरी न मी गुंजद ब सद नामा।
अगर मख़्फी बहमरा-ए-सबा पैग़ाम ख़्वाही कर्द॥

तुम्हारे केशो की लटें यदि जाल के समान हैं और चिबुक पर का काला तिल दाने का काम कर रहा है, तो शीघ्र ही लाखों हृदय-रूपी विहग तुम्हारे जाल मे फँस कर मर मिट जायँगे, अर्थात् तुम्हारी केश-राशि और चिबुक के तिल को देखकर कोई भी बरबस तुम्हे प्यार करने लगेगा। मख़्फी के वियोग की व्यथाएँ और मुसीबतें एक पत्र मे तो आ नही सकतीं, केवल वायु ही दूती बन कर उन्हे तुम तक पहुँचा सकती है। अतः उससे ही अनुरोध है। उसीका आसरा है, वही तुमसे जाकर कहे।

अगर मचल कर कही भर दिया साक़ी हाला से प्याला,
पीने से पहले होगा बदनाम अरे! जग मतवाला॥
इस काले तिल का दाना कर फैलाकर ज़ुल्फ़ो का जाल,
लाखो हृदय-विहग उलझा कर बन्दी कर लेती तत्काल॥

सौ पत्रो मे भी भर पाऊं क्या वियोग की सकल व्यथाएँ,
मलयज-मारुत प्रेम-सँदेशा, मेरा उनसे कह आये।

प्रेम की पुजारिन जेबुन्निसा का उपास्य कोई ऐसा-वैसा थोड़े है ! यदि वह माशूकाना अन्दाज़ से प्याले मे मदिरा ढाले तो पीने से पहले सारा संसार उसका प्रेमी बनकर बदनाम हो जाय। हमारे बच्चनजी का साकी भी कुछ कम नहीं—

सुन ! कल-कल, छल-छल मधु-घट से गिरती प्यालो मे हाला;
सुन ! रुन-झुन, रुन-झुन चल वितरण करती मधु साक़ी बाला।
बस आ पहुँचे दूर नही कुछ, चार क़दम अब चलना है;
चहक रहे सुन पीनेवाले, महक रही, ले, मधुशाला।
जल-तरङ्ग बजता, जब चुम्बन करता प्याले को प्याला;
वीणा झंकृत होती चलती जब रुन-झुन साक़ी बाला।
डॉट-डपट मधु-विक्रेता की, ध्वनित पखावज करती है;
मधुरव से मधु की मादकता और बढ़ाती मधुशाला।
मेहँदी-रंजित मृदुल हथेली मे माणिक-मद का प्याला;
अँगूरी अवगुंठन डाले स्वर्ण-वर्ण साक़ी बाला।
पागवैजनी, जामा नीला डाट डटे पीनेवाले;
इन्द्र-धनुष से होड़ ले रही आज रँगीली मधुशाला॥

तभी तो उस साक़ी के लिए फैयाज साहब भी हृदय को थाम कर फरमाते है—

अगर तू नाज से लबरेज अपना जाम कर लेगी—
तो दुनिया भर को अपने इश्क़ मे बदनाम कर लेगी !

न करदी याद महजूरदाँ ब मकतूबे शुद अय्यामे ।
अगर क़ासिद नमी आयद बदस्तश दिह तो पैग़ामे ॥
अगर अज़ शफ़क़ते दौलत तू अल्ताफे नमी साज़ी ।
नवाज़िश मी तवाँ करदन गदा-ए-रा ब दुशनामे ॥
बरायद आफताब-ए-मह, बराये दीदने रूयत ।
नुमायद गोश-ए-अबरू अगर हुस्ने तो दर शामे ॥
नमी दानम-मन ऐ मरूफी सरं जामम चि ख्वाही शुद ।
बकारे खुद चुमी बीनम नमी बीनम सरंजामे ॥

मेरे हृदय-धन! यदि किसी संध्या को तुम अपना रूप प्रदर्शन करने बाहर निकल आओ, तो अस्ताचल-गामी सूर्य्य भी एक बार तुम्हारी मुख-कान्ति को देखने के लिये फिर गगनांचल मे आजाय। वह तुम्हारी छवि देखने का लोभ संवरण न कर सकेगा। मै नहीं जानती, भविष्य के गर्भ मे मेरे लिए क्या अन्तर्निहित है। राजकुमारी का कवि-हृदय भावुक भी है और साहस, सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति भी। अंधकारमय भविष्य मे झाँकने से लाभ ही क्या? नियति की ग्रंथियाँ एक दिन जब अपने-आप खुलनेवाली हैं, तो असमय उन्हे खोलने का प्रयत्न व्यर्थ ही होगा। हम नहीं जानते उस आवरण के अन्दर क्या है, नियति और नियंता की फुसफुसाहट भी यह कान कैसे सुन और समझ पावे। उमर ख़ैयाम ने भी कहा है—

There was a Door to which I found no Key
Their was a veil past which I could not see

Some little Talk awhile of Me and Thee
There seemed—and then no mob of Thee and Me.

अतः निरत कर्म की उपासिका राजकुमारी ज़ेबुन्निसा यही कामना करती है कि परिणाम की ओर ध्यान दिए बिना बस कर्त्तव्य-पथ पर डटी रहूँ और अग्रसर होती जाऊँ—

Let us then be up and doing,
With a heart for any fate.
Still achieving still persuing,
Learn to behold and to wait

हमारे शब्दो मे शहज़ादी की उक्ति—

बीत गया युग किन्तु हमे तुम पत्र एक भी भेज न पाये ।
पा न सके यदि दूत, स्वयं तुम क्यो न कहानी कहने आये ॥
मुझ अभागिनी को यदि उपकृत दया प्रेम से कर न सकोगे ।
दो अपशब्द मधुर मुख से कह आँचल को क्या भर न सकोगे ॥
एक बार यदि इस पथ पर तव, मुख-शशि संध्या को आये ।
अस्त सूर्य्य छवि-दर्शन करने नभ-मडल मे आ जाये ॥
जान नही पाई हूँ मरुकी क्या भविष्य दिखलायेगा ।
निरत कर्म की इस उपास्य को चिन्तित कभी न पायेगा ॥

बहुत दिवस व्यतीत होगये, किन्तु बिछुड़े हुओ को तुमने कभी पत्र-द्वारा भी स्मरण नही किया। यदि पत्रवाहक नही मिलता था तो स्वयं तुम्हे ही आकर पत्र दे जाना चाहिए था। किसी बहाने से मेरी याद तो करते। मै अभागिन एक दीन-

हीन भिक्षुका हूँ, यदि प्रेम और दया की दौलत से तुम मुझे उपकृत करना नहीं चाहते तो न सही कुछ गालियाँ देकर ही मुझे मालामाल करदो। मुझ अकिंचन को वह भी बहुत सन्तोषप्रद होगी। मेरी तृप्ति उससे ही हो जायगी, जी की जलन मिट जायगी, उस नायिका के संतोष की भाँति जो कह रही है—

"गाली तो खाई लाखों, पर जी की जलन मिटा ली।"

पत्र और अपशब्दो की भी अनुपस्थिति मे प्रेमी यह मानने को तैयार नही कि वे मुझको प्यार नही करते, क्योकि प्रेम और उसका आश्वासन-भर ही तो जीवन का सर्वस्व है। बात सच भी है—

"कैसे मानूँ अब वे निर्मम,
करते मुझको प्यार नहीं।
उनके बिना हाय! मेरा तो,
क्षण भर भी संसार नहीं॥"

× × × ×

बुत परस्तानैम ब इस्लाम मारा कार नेस्त।
ग़ैर तारे ज़ुल्फ मारा रिश्त-ए-ज़ुनार नेस्त॥
हमदमे गर नेस्त ऐ दिल रोज़े-महनत गो मबाश।
मूनिसे जिन्दाँनिया रा बहतर अज दीवार नेस्त॥
मूस-ए-चायद कि पाये दिल नहद बर दारे इश्क़।
बुल हविस बिनशी कि राहे कूच-ओ-बाज़ार नेस्त॥

लज्जते दर्दे-मुहब्बत रा जि बेदरदाँ मपुर्स ।
क़द्रे सेहत रा नदानद हर कि ओ बीमार नेस्त ॥
ज़ादमे दरदैमो अज खूने-जिगर परवरदा ऐम ।
कोह्हा-ए-गम अगर आयद मरा आज़ार नेस्त ॥
मख्फीयाँ गर वस्ल ख्वाही बा गमे हिजराँ बिसाज ।
कंदरीं गुलजारे आलम यक गुले बेखार नेस्त ॥

अर्थात्—

मै प्रतिमा-पूजक हूँ, मुसलिम से अब नाता तोड़ चली हूँ ।
अलको मे प्रिय के उलझी हूँ, माला को भी छोड़ चली हूँ ॥
चिन्ता क्या यदि कोई नही, दुख मे संगी साथी मेरा ।
बन्दी हूँ, दीवारो से ही अब मै नाता जोड़ चली हूँ ॥
कह दो मूसा से सनेह की शूली पर वह चढ़ जावे ।
हविस लिये मत आना—मै तो कर जीवन से होड़ चली हूँ ॥
मत पूछो तुम प्रेम-व्यथा को इन सुख के दीवानो से !
अच्छे जाने क्या रोगी को इसीलिये मुख मोड़ चली हूँ ॥
हुई कसक-से मै पैदा हूँ और प्रेम से अरे पली हूँ ।
दु:ख से मै कब घबराई हूँ भय को तो अब छोड़ चली हूँ ॥
मधुर मिलन की एक कामना के बल पर यह दु:ख सहे है ।
कल न मिलेगी कण्टक के बिन चरण पूजने दौड़ चली हूँ ॥

प्रेम की दीवानी राजकुमारी प्रेम-पन्थ की पथिका है। वह कहती है, मै तो प्रतिमा-पूजक हूँ, मुझे इस्लाम से कोई सम्बन्ध नहीं। प्रिय के घुंघराले बालो की उलझन मे उलझ कर मै तो

अब माला को भी एक ओर रख चुकी हूँ। मुझे किसी के धर्म-कर्म की विशेष चिन्ता नहीं, क्योंकि मैं तो प्रेम की पुजारिन हूँ—अकेलापन ही मुझे भाता है; संगी-साथियो के विमुख होने की मैंने परवाह ही कब की है। वह तो मीरा की भाँति—

"हे री! मैं तो प्रेम दिवाणी, मेरा दरद न जाणे कोय!"

प्रेम की दीवानी है और—"भाई छोड़्या, बन्धु छोड़्या, छोड़्या सगा सोई—" सबसे विरक्त हो चुकी है। तभी तो वह कहती हैं कि मूसा (मुसलमानो के एक पैग़म्बर जिन्होने साक्षात् परमात्मा का दर्शन किया था) को चाहिये कि अपने हृदय को प्रेम की फाँसी पर चढ़ा दे अर्थात् प्रेम मे तन्मय होजायँ और उन हविसवालों से कह दो कि वह इस मार्ग से न चलें, क्योंकि प्रेम का मार्ग सरल नहीं है। मीरा तो—

"यदि मैं ऐसा जानती, प्रीति किये दुख होय!
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीति करो नहिं कोय!!

कह कर नगर-ढिंढोरा पीटने को कहती है, किन्तु राजकुमारी तो स्वानुभूति से सावधान कर रही है, और वास्तव मे

"नेह के मारग में चलिबो तरवार की धार पै धाइबो है।"

अपरिचित व्यक्तियो से प्रेम की मधुर पीड़ा को पूछना व्यर्थ है, क्योकि जो प्रेम-रोग से पीड़ित नहीं है वह जीवन के आनन्द को क्या समझे—

"क्या जाने जीनेवाले, मरने मे कैसा सुख है?
प्रिय की सुस्मृतियो तक ही, सीमित प्रेमी का दु:ख है

सचमुच—

"जेहि के पाँव न फटी बिवाई।
सो का जाने पीर पराई॥"

"मै दर्द से उत्पन्न हुई हूँ और हृदय के रक्त से मेरा पालन-पोषण हुआ है, अतः मुझ पर यदि विपत्तियो के पहाड़ भी टूट पड़े तो मुझे हानि नही पहुँचा सकते। 'मख्फी', यदि तू मधुर मिलन की कामना करती है, तो पहले वियोगी की मुसीबतो से परिचित तो हो जा, क्योंकि इस विश्व के उपवन में कोई भी गुलाब बिना काँटे नही होता।" दुःख के पश्चात् ही सुख मिलता है।

यहाँ तो राजकुमारी अपने पवित्र प्रेम के भाव-प्रदर्शन मे "ताज" (मुसलमान कवियित्री) से भी आगे निकल गई है। 'ताज' ने कहा था—

"सुनो दिलजानी, मेरे दिल की कहानी तुम,
दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मै।
देव-पूजा ठानी हौं निवाज हू भुलानी, तजे—
कलमा कुरान, सारे गुनन गहूँगी मै॥
साँवला सलोना सिरताज सिल कुल्लेदार,
तेरे नेह-दाघ मे निदाघ ह्वै दहूँगी मैं।
नन्द के कुमार कुरबान तेरी सूरत पै,
हौ तो तुरकानी हिन्दुआनी ह्वै रहूँगी मै॥

वास्तव मे प्रेम की व्यथा, त्याग और सहानुभूति का पाठ

पढ़ानेवाली अद्वितीय शिक्षिका है। राजकुमारी स्वानुभूति को तभी तो इन दर्दनाक शब्दो मे लिख सकी—

ऐ आबशारें नौहागर ! अज़ बहरे चीस्ती।
चीं बर जिबी फिगंदा ज़ि अन्दोह कीस्ती॥
आया चि दर्द बूद कि चूँ मा तमाम शब।
सररा बसंग मी ज़दी ओ मी गिरीस्ती॥

ऐ निर्झर ! तू विलाप क्यो करता है, किस दुःख से तेरे माथे पर बल पड़े हुए हैं ? तुझे ऐसा क्या दुःख है जो मेरी ही भाँति सारी रात पत्थर पर सर पटक-पटक कर रोता रहा है।

राजकुमारी के विषादमय, दुःख से ओत-प्रोत जीवन की कैसी करुण कहानी है। अन्तिम काल मे क़िले की चहार-दीवारी के अन्दर बन्दी जीवन व्यतीत करती हुई राजकुमारी दूर बहते हुए झरने को देखकर समवेदना की, सहानुभूति की, एक झलक देख पाती है। उसे अपनी असीम व्यथा का निदान स्वर्गीया श्रीमती पुरुषार्थवतीजी की भाँति इसी निर्झर की धारा मे मिलता है—

सदा दृग-जल से रोता विश्व, हृदय तुम देते अपना चीर।
कहाँ पाओगे प्रेम अनन्त, बहाकर अपना मानस नीर॥
खींचकर स्वर-लहरी के बीच, वेदना के सूने उद्‌गार।
निरन्तर देते हो सन्देश, नही पाते हो फिर भी प्यार॥

हृदय करता है हाहाकार, किन्तु रहता है मुख अम्लान।
प्रेम-पथ करते हो निष्कष्ट, थामकर आँखो का तूफ़ान॥

राजकुमारी की इस तड़पती हुई वाणी ने लाखो भावुकों को हिला दिया है। एक युग के उपरान्त आज भी उनकी व्यथा वैसी ही साकार और सरस है। इस असीम व्यथा को कोई समझे तो !

रोजे नो उमेदी चूँ आयद आशना दुश्मन शबद।
ग़म जुदा शादी जुदा दौलत जुदा दुश्मन शबद॥
नेस्त मख्फी दर दिले मा दुश्मनी बा हेच कस !
हर कि वा मा दुश्मनस्त बा ओ खुदा दुश्मन शबद॥

भाग्य की मारी हुई इस राजकुमारी के करुण उद्गार कितने वेदनापूर्ण है। जो वैभव और विलास की गोदी मे पली महाप्रतापी मुगल-सम्राट् औरङ्गजेब के नाज और नखरो की वस्तु, जिसके एक-एक इंगित पर लाखो की दुनिया बन गई, बिगड़ भी गई, वही राजकुमारी अपने यौवन, ऐश्वर्य, सुख-विलास से विलग करके, राजनीति के कारण, किले की चहार-दीवारी के अंदर बद करदी गई है। उसकी दशा एक उजड़े हुए बाग के समान है। वह जो कि—

"महकता था जो किसी दिन भाग्य पर इतरा रहा था—
और आशा-वल्लरी का भार जिसने हँस सहा था॥

फूल उसके झड़ चुके कलियाँ अरे! मुरझा गई हैं।
वह लुटा-सा बाग़ मेरा आज सूखे पत्र लाया॥
अलि, रुदन मन आज आया!

—उमेश भार्गव।

और बच्चनजी के शब्दों मे भी दिनो का फेर और समय की गति सुनकर ज़रा तोलिये तो—

"एक समय छलका करती थी, मेरे अधरो पर हाला।
हुआ निछावर मुझ पर करता, था हा एक समय प्याला॥
एक समय पीनेवाले, साक़ी! आलिंगन करते थे।
आज बनी हूँ निर्जन मरघट, एक समय थी मधुशाला॥"

जीवन की विषमता भी कितनी दारुण है! राजकुमारी कहती है कि जब निराशा के दिन आते है तब मित्र भी शत्रु बन जाते है। दुःख-सुख, धन-दौलत सभी अपना मुँह फेर लेते है। किसी शाइर के शब्दो मे जब कि—

"कौन होता है बुरे वक्त की हालत का शरीक!
मरते दम आँख को देखो कि फिर जाती है!"

बतलाइये अब और किसका ठिकाना जब कि शरीर के अंग भी स्वयं धोखा दे जाते है! 'फैयाज़' ने फरमाया तो है—

"जब बुरे दिन आये तो यार आशना दुश्मन बने,
ग़म-ज़ुदा दुश्मन बना ग़मज़े ज़ुदा दुश्मन बने!"

पर फिर भी 'मरूफी' हमारे दिल मे तो किसी की भी दुश्मनी नही है। अतः जो कोई हमारा वैरी होगा उसे ईश्वर समझेगा।

देखी हृदय की उदारता। तप और त्याग की वेदी पर ही तो यह सब-कुछ सीखा जा सकता है—

× × × ×

दिल चूँ फव्वार-ए-सीमाब बजोशस्त इम शब।
वक्ते-मय-ख्वास्तनो रुख़सते-होशस्त इम शब॥
नामा अज जानिबे फरहाद ब शीरी बिबुरद।
कि वरा-ए-तो हवा शीरे-फरोशस्त इम शब॥

अर्थात्—

पारे से बेचैन उत्स-सा आकुल है उर आज रात को;
ऋतु ऐसी पीकर मदिरा हम, भूले सुध-बुध आज रात को!
कहता है फरहाद कोई, शीरीं से जाकर कह देना—
"मलयज मारुत दुग्ध-फेन सी कहती 'मिल ले!' आज रात को!"

आकुल फव्वारे की भाँति मदिरा भी आज शीशे के बाहर निकलने को मचली पड रही है। इस मधुमय रात्रि मे आज ऐसा समा बँधा हुआ है कि हृदय सुध-बुध खोकर आनन्द मे मग्न होने की कामना कर रहा है। इन जीवन के मधुर क्षणो और सुख मे भूलती हुई प्रकृति मे सामञ्जस्य स्थापित करने के लिये फरहाद (प्रेमी) कहता है कि कोई आज यह सन्देश शीरीं (प्रेयसी) से जाकर कहदे कि "आज इस सुहावनी रात्रि मे मन्द सुगन्ध समीर तेरे लिये दूध उछालकर कह रही है कि चलकर मधुर मिलन का आनन्द उठा लो।" फारसी मे "हवा शीरफरोश" का अर्थ है मन्द समीर। अतः

पद का सारांश है कि मंद-मंद मारुत मादक गति से चल रही है, और समय अत्यन्त आनन्दपूर्ण है। अपने प्रियतम को बुलाकर दो घड़ी तो सुख लूट लेना चाहिये, क्योंकि उमर खैयाम के अनुसार—

> One Moment in Annihilation's Waste
> One Moment, of the Well of Life to taste—
> The stars are setting and the Caravan
> Starts for the Dawn of Nothing—Oh make haste.

बोतल में बंद मदिरा का निकलने के लिए आकुल होना कितना सुन्दर है। यह वही मदिरा है, जिसे पिये बिना जीवन व्यर्थ है। बच्चनजी के शब्दों में भी—

> लालायित अधरों से जिसने, हाय, नहीं चूमी हाला।
> हर्ष-विकम्पित कर से जिसने, हा! न छुआ मधु का प्याला॥
> हाथ पकड़ लज्जित साकी का, पास नहीं जिसने खींचा।
> व्यर्थ सुखा डाली जीवन की उसने मधुमय मधुशाला॥

और प्रकृति के सुखद संयोग के साथ प्रियतम के मधुर मिलन में आज ही सुध-बुध भूल जाना आवश्यक है। वह ऐसी विस्मृति हो कि जिसमें हो चिरानन्द और अटूट तन्मयता। आज तो बच्चनजी के शब्दों में—

> आज सजीव बना लो प्रेयसि! अपने अधरों का प्याला।
> भर लो, भर लो, भर लो इसमें, यौवन मधु-रस की हाला॥

और लगा मेरे अधरो से, भूल हटाना तुम जाओ।
अथक बनूँ मै पीनेवाला, खुले प्रणय की मधु-शाला॥

फरहाद का सॅदेशा राजकुमारी के शब्दो मे इससे कही अधिक आकर्षक है। अनुभूति की बात ठहरी !

× × × ×

ब शीरीनी दहानत .गुंचारा गुफ़्तार बायस्ते;
ब इस्तकबाले क़द्दत सर्व रा ,रफ़्तार बायस्ते।
चुनी दर्दे कि मन दारम तबीबम यार बायस्ते;
बजाये शरबते-क़न्दम लबे-दिलदार बायस्ते॥

शहजादी जेबुन्निसा कहती है कि हकीम के शरबतो या दवाओ से मेरा उपचार न हो सकेगा। ओषधियो के स्थान पर, प्रियतम ! तुम्हारा मधु-चुम्बन ही मेरा उपचार है। मेरा मसीहा ही मेरा निदान कर सकता है।

तेरी मुख-छवि कहने को, कलियो के पास नही वाणी।
स्वागत कैसे करे 'सर्व' तव, पास नही गति कल्याणी॥
मेरी कसक व्यथा का सचमुच प्रियतम ! तुम उपचार करोगी।
मधु शरबत क्या ? मुझे चाहिये तेरे अधरो का पानी॥

कवियित्री का उपास्य इतना कोमल और सुन्दर है कि उसके वदनारविन्द की छवि वर्णन करने के लिए केवल कलिकाये ही उपयुक्त हो सकती थीं; किन्तु अब वाणी के अभाव में वे भी असमर्थ है। उसके स्वागत के लिए 'सर्व' (एक प्रकार का सुन्दर लम्बा गुमटीदार वृक्ष) को तैयार हो जाना चाहिए

था; किन्तु वह बेचारा करे क्या ! उसमें चलने की शक्ति ही नहीं। एक स्थान पर स्थिर रहकर भला उनका स्वागत कैसे किया जा सकता है। जैसा दुःख-दर्द, राजकुमारी कहती हैं, मुझे है, उसके इलाज के लिये हकीम की आवश्यकता नहीं है। उसका निदान तो बस प्रियतम के ही पास है। हकीम बेचारा क्या जाने ! राजरानी मीरा ने तो कहा है —

"बाबल बैद बुलाइया रे, पकड़ दिखाई म्हारी बाँह ।
मूरख बैद मरम नहिं जानैं, करक कलेजे माँहि ॥"

यदि प्रियतम हकीम बनकर आयें तो, सम्भव है, यह दुःख मिट जाय—

"दरद की मारी बन-बन डोलूँ, बैद मिला नहिं कोय ।
'मीरा' की प्रभु पीर मिटेगी जब बैद साँवलिया होय ॥

कितना भाव-साम्य है !! दोनो वैभव और विलास से खेलीं, दोनो ने राजप्रासादों के प्रांगण की शोभा बढ़ाई और अन्त में दोनो ही 'इश्क़ हक़ीक़ी' को पहुँच गईं ! जीवन की अद्भुत समानता ने ही मानों दोनों के हृदय को एक कर दिया है। शहज़ादी ज़ेबुन्निसा तभी तो "फ़ारसी की मीरा" है। राजकुमारी मीरा का और उनका प्रेम-पन्थ दिव्य है, सुन्दर है, रसमय है, और बहुत कुछ एक-सा है। मीरा और ज़ेबुन्निसा के अन्तस्तल में एक ऐसा रहस्य निहित है जिसमे विभिन्नता हो ही नही सकती। सब कुछ भूल कर हमें यह याद रखना होगा कि मीरा और

जेबुन्निसा एक-सी थी। दोनों में प्रेम-विह्वल नारी-हृदय था।

× × ×

फर्ज करदग कि ब यादे तो दिलम खुरसन्दस्त,
लेकिन ईं दीद-ए-दीदार-तलब-राचि इलाज ?
मी तवाँ दाश्त निहाँ दर्दे तो दर दिल लेकिन—
जर्दी-ए-रंगे-रुखो खुश्की-ए-लब-राचि इलाज ?

प्रिये! तुम्हारी मधु-स्मृति से हृदय मान भी जाता है अब—
पर इन प्यासी आँखों का उपचार न मुझको आता है अब ?
सखे! तुम्हारे असित प्रेम को हृदय-देश में अरे! छिपाऊँ।
पर कुम्हलाये मुख को, सूखे अधरों को कैसे समझाऊँ ?

प्रेम-रहस्य का छिपाना वास्तव में बड़ा कठिन है, क्योंकि इसके लक्षण इतने स्पष्ट हैं कि कभी छिपाने से नहीं छिपते। किसी कवि ने कहा है—

"तुमहिं बतावत ठीक मैं प्रेमिन की पहिचान।
दृगन नीर बरसै तऊ मुखड़ा रहा भुरान॥"

निर्मम विश्व-प्रेमियों को आहें भरते, आँसू बहाते देख कर कब उन्हें समझ पाया है। वह तो उपहास उड़ाने और बद-नामी फैलाने का एक साधन है। तभी तो प्रेमी अपने इस रहस्य को सदैव छिपाने की चेष्टा करते हैं। एक दूसरे के विरह में, अकेले कोने में पड़े, तरसा करते हैं, क्योंकि रियाज साहब के शब्दों में—

"इधर डर हमें अपनी रुसवाइयों का,
उधर खौफ उन्हें अपनी बदनामियों का।

पड़े याद करते हैं इक दूसरे को—
इधर हम अकेले उधर वो अकेले !"

और, उधर 'ख़ैयाम' कहता है कि,

Indeed the Idols I have loved so long,
Have done my Credit in Men's Eye much wrong—
Have drowned my Honour in a Shallow Cup—
And sold my Reputation for a Song.

तभी तो राजकुमारी ज़ेबुन्निसा कुछ चिन्तित होकर कह रही है कि मै मानती हूँ कि तुम्हारी स्मृति से मेरा हृदय सदा प्रसन्न रह सकता है, पर दर्शनो की भूखी इन आँखो का क्या उपाय करूँ। यह तो सारे रहस्य का उद्घाटन कर देती हैं—

"प्यार ही था हा ! जिसका नाम—
कि जिसको अब कहते विच्छेद।
अभागी आँखे हठ की मूर्ति,
खोल देती है सारा भेद !"

मै सदा अपने हृदय मे तेरे प्रेम को छिपाये रहती हूँ, किन्तु मेरे मुख का पीलापन (वैसा ही जिसके लिये मीरा कहती है—

"पाना ज्यो पीली पड़ी रे ! लोग कहे पिड रोग !")

और शुष्क अधर तो सदा प्रेम-रोग के चिह्न बन कर कुछ छिपाने ही नहीं देते ! विवशता की भी कोई सीमा है !! बेचारी क्या करे। बेबस है ! 'फ़ैयाज़' साहब का कथन है—

"मैं मुहब्बत को तेरी दिल मे छिपा लूँ—लेकिन—
चेहरे के रंग का, सूखे हुए होठो का इलाज ?"

बुलबुल अज़ गुल बि गुज़रद गर दर चमन बीनद मरा।
बुतपरस्ती कै कुनद गर बिरहमन बीनद मरा॥
दरसखुन मख्फी मनम चूँ बू-ए-गुल दर बर्गे गुल।
हरकि दीदन मैल दारद दर सखुन बीनद मरा॥

इस सम्बन्ध का प्रसङ्ग हम पीछे वर्णन कर आये हैं। यहाँ तो हमे शहज़ादी ज़ेबुन्निसा के ज्वलन्त अन्तराल के साथ उसके अतुलनीय भौतिक सौन्दर्य की भी एक छटा दिखाना अभिप्रेत है। वास्तव मे शहज़ादी अनिंद्य सुन्दरी थी। वह थी कि—

"जिस किसी की आँख उस पर पड़ गई,
देखते ही देखते दिन बीतता।
बस उसी के हृदय पर थी चढ़ गई,
उस सलोने रूप की लोनी लता॥"

मुगल राज-प्रासादो मे पली सौन्दर्य की उस प्रतिमा को एक बार जिसने भी देख पाया, उसके हृदय पर वह दृश्य, वह छवि सदा के लिए अंकित होगई। हरिऔधजी की राधा से वह कुछ कम थोड़े ही थी—

"रूपोद्यान प्रफुल्ल-प्राय कलिका राकेन्दु-बिम्बानना।
तन्वङ्गी कलहासिनी सुरसिका क्रीड़ा-कला पुत्तली॥

शोभा-वारिधि की अमूल्य मणि-सी लावण्यलीलामयी।
श्रीराधामृदुभाषिणी मृगदृगी माधुर्य्य-सन्मूर्ति थीं॥"

राजकुमारी ज़ेबुन्निसा के उक्त भाव और हमारी हिन्दी की भावुक-हृदया-कवियित्री श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान के भावो मे कितनी समानता है; कितनी मस्ती है—

अपने कविता-कानन की, मै हूँ कोयल मतवाली।
मुझसे मुखरित हो गाती, उपवन की डाली डाली!
मैं जिधर निकल जाती हूँ, मधुमास उतर आता है।
नीरस जन के जीवन में, रस घोल-घोल जाता है!
सूखे सुमनो के दल पर मै मधु-संचालन करती।
मै प्राणहीन का अपने, प्राणों मे पालन करती॥
मेरे जीवन में जाने, कितना मतवालापन है—
कितना है प्राण छलकता, कितना मधुमिश्रित मन है!!

× × × ×

बि शिकन्द दस्ते कि खम दर-गर्दने-यारे न शुद।
कोर बिह चश्मे कि लज़्ज़तगीर दीदारे न शुद॥
सद बहार आख़िर शुदो हर गुल ब फिरक़े जा गिरफ़्त।
ग़ुंच-ए-बाग़े-दिले मा ज़ेब दस्तारे न शुद॥

अर्थात्—

वह कर टूटे हुए भले जिनने न किया प्रिय-आलिंगन है।
प्रियतम की छवि देख न पाए वह अंधे ही भले नयन हैं॥

हर वसन्त मे कली बाग की अलि, उपास्य से मिल पाई है।
पर मेरे उर-उपवन की कलि, बिन गाहक ही मुरझाई है॥

इस कठोर विश्व मे—जहाँ दुःखो की झंझावात मानव-जीवन को झकझोर डालती है, आपत्तियाँ उसे घेर कर चकना-चूर कर डालती है—केवल प्रेम ही शान्तिदायक है—

"प्रेम ही यम हो, प्रेम ही नियमन,
प्रेम ही जीवन, प्रेम मरण हो।
प्रेम नगर की रीति यही है,
जो खोया सो पाया।"

तभी तो निराशा के सागर मे गोते खाता हुआ मानव नियति की ओर एक बार देखकर इसी 'प्रेम' के सहारे की कामना करता है। शाइरा कहती है कि प्रेम के बिना संसार शून्य है। वह हाथ, जिन्होने कभी किसी प्रेमी का आलिंगन नहीं किया, टूटे ही अच्छे है, और वे नेत्र जो कभी अपने प्रिय की मुख-छवि को देख न पाये, अधे ही अच्छे। वसत की मादक बयार मे, जब कि विश्व हँसकर थिरक रहा था, और उपवन सुगन्ध से महक रहा था, प्रत्येक कुसुम को कोई न कोई गाहक मिल गया। भ्रमरो ने कलियो के जीवन को सार्थक कर दिया, प्रेम की सरिता वह उठी, पर मुझ अभागिनी की हृदय-कली किसी उपास्य के चरणो पर उत्सर्ग न होपाई अर्थात् मेरा समस्त जीवन व्यर्थ हुआ।

"आई बहार कलियाँ फूलों से हँस रही हैं;
मैं इस अँधेरे घर में किस्मत को रो रही हूँ!
बाग़ों में बसनेवाले खुशियाँ मना रहे हैं;
मैं दिलजली अकेली दुःख में कराहती हूँ!!"

कविवर रामकुमार वर्मा ने भी तो कहा है—

"वन में भी तो मधु ऋतु का होजाता है आवर्त्तन।
पर उजड़ा ही रहता है मेरी आशा का उपवन॥"

वास्तव में राजकुमारी ज़ेबुन्निसा का जीवन दुःख और वेदना की एक करुण गाथा है; तभी तो परवेज़ख़ाँ ने कहा था—

"पीर शुद ज़ेबुन्निसा लेकिन खरीदारे न शुद!"

× × × ×

बर किशन अज शमअ रुयत ऐ सहे खूबी नकाब;
ता बरुनद सिन्नत त्तिहद बर पाए तो गर आफताब!
कामरानी गर कुनी सरूफ़ी नुमाई उम्रे ख्वेश;
गिरिया बेहद, नाला बेहद सीना बिरियाँ दिल कबाब!!

अर्थात—

मुख-शशि से प्रियतर यदि तारा सब पर आवरण सरक जाये।
लज्जित होकर तभी दिवाकर तव चरणों पर गिर जाये॥
प्यार सफलता की जो 'मख़फ़ी', तो सनम सर-पूर किये जा—
करुणा बदन पार, दग्ध हृदय कर, अरमानों को चूर किये जा!!

कवयित्री का उपास्य इतना सुन्दर है कि यदि वह अपने चमकते चेहरे पर से कृष्ण-अम्बर का घूँघट हटाले तो सूर्य्य झुककर

अपना शिर उसके चरणो मे रख दे; अर्थात् यदि हृदय-धन अपनी मुख की कान्ति एक बार दिखलादे तो सूर्य्य भी लज्जित होजाय। 'फैयाज' साहब के शब्दो मे—

"तुम अगर इस चॉद-से चेहरेसे सरकादो नकाब।
तो खुशामद से रखे क़दमो प' सर को आफताब॥

वह सौन्दर्य्य इतना प्रदीप्त है कि यदि नायिका एक बार घूँघट हटाले तो शाइर को, उससे पहले ही, कह देना पड़े—

"ऐ बादे सबा! जाना,
मूसा को यह समझाना—
बेहोश न हो जाना,
उठता है नक़ाब उनका!"

जिस समय तूर पर्वत पर हज़रतेमूसा ने परमात्मा का दिव्य-दर्शन किया था तो उस अनन्त-ज्योति के चकाचौंध के मारे वह मूर्च्छित होगये थे। कवि को भय है कि कहीं इस बार भी 'उन्हे' देखकर मूसा को गश न आजाय। एक दूसरा शाइर तो अपने प्रियतम की छवि की प्रखरता पर प्रयोग करने बैठ गया है—

रुखे-रौशन के आगे शमअ् रखकर वो य' कहते है—
उधर जाता है देखे या इधर परवाना आता है!

पर वह बात यहाँ नही आ पाई!

'मख्फी' कहती है कि यदि तू अपना जीवन सफल बनाना चाहती है तो अपने दग्धहृदय को प्रियतम की स्मृति मे ही

तन्मय करदे। अपनी सुध-बुध भूल जा। भगवतीचरण वर्मा की तन्मयता भी कुछ-कुछ कवियित्री की तन्मयता से मिलती-जुलती है—

"तुम सुध बन-बन कर बार-बार
क्यो कर जाती हो याद मुझे।
फिर विस्मृति बन तन्मयता का,
क्यो दे जाती उपहार तुझे!"

× × × ×

ऐ हुस्ने! तो आराइशे-सहरा-ए-क़यामत;
वे नाज़े तो बर हमज़ने ग़ौग़ा-ए-क़यामत!
हर रोज़ क़यामत गुज़रद बर दिले मख़्फ़ी;
ता चन्द तवाँ वादा बफरदा-ए-क़यामत!!

महाप्रलय की वीरानी को—
सज्जित कर दे तेरा रूप!
महानाद होजाय शान्त यह—
हावभाव के लखकर यूप!!
मख़्फ़ी पर तो रोज़ प्रलय की—
घोर यंत्रणाये छाती!
आह! प्रलय तक 'आज नहीं
कल' मुझे रहेगी कलपाती!!

कवियित्री की उक्त पंक्तियाँ अपने उपास्य पैग़म्बर के प्रति हैं। वह कहती है; ऐ हमारे पैग़म्बर, तेरा सौन्दर्य प्रलय क

शोभा होगा और तेरी अदायें प्रलय के नाद को अपनी ओर आकर्षित करनेवाली। अर्थात् कयामत (महाप्रलय) के दिन, जबकि समस्त विश्व दुःख और व्याकुलता से परिपूर्ण होगा, तब तेरा मोहक रूप और आकर्षक मनोभाव उनको शान्ति प्रदान करेंगे। 'मख्फी' के हृदय ने तो प्रति-पल, प्रति-क्षण प्रलय की-सी आकुलता भरी रहती है, अत. कब तक तू प्रलय के दिवस का वचन देगा। हे प्रभु! अब वियोग मेरे लिए असह्य हो चुका है, शीघ्र ही दर्शन देकर अतृप्त हृदय को शान्ति प्रदान करो। प्रिय-दर्शन की भूखी राजरानी मीरा ने भी तो कहा है—

"म्हाँरे नातो नाम को रे! और न नातो कोय।
मीराँ व्याकुल बिरहनी रे, पिय दरसण दीजो मोय॥"

× × × ×

बया बया कि मरा ताबे-इन्तजार न माँद।
अनाने दिल जि कफम रफ्त इख्तियार न माँद॥
जि गुलिस्ताने-मुहब्बत निशाँ मजो मख्फी—
कि गैर दागे दिलो-सीन-ए-फिगार न माँद॥

अर्थात्—

बहुत प्रतीक्षा हुई, न मुझमें—
शक्ति रही, आह्वान! सखी री!
कह देना जल्दी ही आयें—
गया हाथ से हृदय सखी री!

'मरुफी' है अवशिष्ट न कुछ भी,
अरे! प्रेम के उपवन का अब,
दिल मे है यह दाग़, और है—
भग्न हृदय, बस आज सखी री!

अपने उपास्य की प्रतीक्षा करते-करते युग बीत गये, किन्तु वे न आये। प्रतिदिन ऊषा की प्रथम किरण के साथ आशा का उदय होता था और दिन-भर ऑखे पथ पर बिछी रहती थी, पर निराशा के अतिरिक्त और कुछ हाथ न आता था! उत्कण्ठा और वेदना बढ़ती ही जाती थी।

कृष्ण के वियोग से राधा की भी तो, पूज्य 'हरिऔधजी' के शब्दो मे, यही गति थी—

"नाना चिन्ता सहित दिन को राधिका थीं बिताती।
ऑखो को थी सजल रखती उन्मना थीं दिखातीं॥
शोभावाले जलद बपु की हो रही चातकी थी।
उत्कण्ठा थी परम प्रबला वेदना वर्द्धिता थी॥

अनवरत प्रतीक्षा चलती ही रही, पर आशा ने साथ न छोड़ा—

आज प्रतीक्षा मे बैठी हूँ ऑसू की माला पोये!
जाने कितनी बार आज तक नयन निराशा से धोये!!

—'उमेश' भार्गव।

राजकुमारी की प्रतीक्षा भी बहुत-कुछ ऐसी ही है। वह कहती है कि मै तुम्हारा निहोरा करती हूँ प्रियतम! तुम शीघ्र

ही आओ। युगो से प्रतीक्षा करते-करते अब प्रतीक्षा करने की मुझमे शक्ति नही रही है। मेरे हाथो से हृदय की बागडोर छूट गई है और मेरा बस जाता रहा है। मैथिलीशरणजी की उर्मिला की प्रतीक्षा इन सबसे कही अधिक सरस और अनूठी है। वह कहती है—

"प्रिय ने सहज गुणो से दीक्षा दी थी मुझे प्रणय जो तेरी।
आज प्रतीक्षा द्वारा लेते है वे यहाँ परीक्षा मेरी॥"

उर्मिला तो उस परीक्षा मे सफल होने की तैयारी कर रही है! वहाँ ऊबने या थकने का क्या काम!!

मीरा का आह्वान भी सुनिये—

"राम मिलण रो घणो उपावो, नित उठ जोऊँ बासड़ियाँ।
दरसण बिन मोहि पल न सुहावै, कल न पड़त है ओपड़ियाँ॥
तड़प-तड़प के बहु दिन बीते, पड़ी बिरह की फाँसड़ियाँ।
अब तो वेगि दया कर साहिब, मै हूँ तेरी दासड़ियाँ॥"

जब तपस्या सफल होने को है तो फिर आने मे देर कैसी!

"पलको के उत्थान-पतन मे,
अगणित मुक्ताओ के ढेर—
बिखर पड़े है स्वागत करने,
अब आने मे कैसी देर!"

—'उपासकजी'।

ऐ 'मरूफी'! प्रेमोपवन की सीमा ढूँढने का प्रयत्न तू अब यहाँ न कर, क्योकि यहाँ तो दग्ध हृदय है, और फफोले है—

"छेड़ना यहाँ न विस्मृत गीत, खोजना मत खोया अनुराग !
भंग मत करना मौन समाधि कहीं लुट जाय न मधुर विराग !!"
—'नलिनी'

मेरा हृदय प्रेम का अथाह सागर बन गया है, जिसमें तेरी प्रेममयी प्रतिमा सतत निवास करती है। अब मुझे उसे बाहर खोजने की आवश्यकता ही क्या है? मीरा के शब्दों में—

"रमैया मैं तो थारे रँगराती।
औरों के पिया परदेस बसत हैं, लिख-लिख भेजें पाती।
मेरा पिया मेरे हृदय बसत है, गूँज करूँ दिन-राती॥
और सखी मद पी-पी माती, मैं बिना पियाँ मदमाती।
प्रेम-भठी को मैं मद पीयो छकी फिरूँ दिन-राती॥"

× × × ×

मन आँ परवान-ए-इश्क़म कि दर आतिश वतन दारम।
चूँ फ़ानूस आतिशे-दिल रा ब ज़ेरे पैरहन दारम॥
न पिन्दारी कि दर हिजरत न सबरस्तो न आरामे।
जि अफ़गाँ दाग हा बर दाग मुरगाने चमन दारम॥
प्रेम का वह शलभ हूँ मैं आग में घर बसा जिसका।
हृदय में है अग्नि मेरे और तन आवरण जिसका॥
प्रिय ! मैं कलपती शान्तिहीना—दग्ध करती विरह-ज्वाला—
श्वास मेरे करुण रोदन से दुखी है विहग-बाला॥

प्रेम-ज्वाला का तीक्ष्ण ताप भीतर-ही-भीतर घुन की भाँति खाया करता है—

"गेह कियो नव-नेह नवल बाल की देह मे।
सूखति जाति अछेह तरु ज्यौ अम्बर बेलि सौ॥

—दुलारेलाल भार्गव

तभी राजकुमारी जेबुन्निसा कहती है कि मै प्रेम का वह पतंगा हूँ जिसका घर सदा आग मे रहता है और जो दीपक की भाँति अपने हृदय की ज्वाला अपने शरीर के आवरण से छिपाये रहता है। फयाज साहब के शब्दो मे—

"मुहब्बत का मै परवाना हूँ आतिश है वतन मेरा।
छिपाये हूँ मै दिल मे आग है फानूस तन मेरा॥"

हे प्रियतम! यह न समझना कि तुम्हारे वियोग मे मुझे किसी प्रकार भी चैन है। मेरी स्थिति तो, इसके विपरीत, इतनी विकट हो गई है कि पक्षियो के कलरव से मेरे हृदय पर दाग़ पड़ जाते है, वह भी मुझे मेरा उपहास करते हुए प्रतीत होते है; उनकी वाणी मुझे कठोर मालूम होती है। यह है भी ठीक, प्रेम करके व्यंग और कटाक्ष के अतिरिक्त मिला भी क्या है, जो मै ऐसा न समझूँ?

"करना प्यार और मिट जाना,
ठोकर खा पापाणो की।
मजनूँ को इस प्रेम-नगर मे,
यही सदय उपहार मिला!"

—उपासकजी

और प्रेमियो को बदनामी का तो भय ही क्या! उस तन्म-

यता की समाधि कहीं इस तरह भङ्ग होती है—

"कोई कहो कुलटा कुलीन अकुलीन कहो,
कोई कहो रंकिनी कलंकिनी कुनारी हौं।
कैसो परलोक नरलोक वर लोकन मे,
लीन्हों मै असोक लोक लोकन तें न्यारी हौं।
तन जाहि, मन जाहि, 'देव' गुरुजन जाहि,
जीव क्यो न जाहि, टेक टरत न टारी हौं।
वृन्दावन वारी बनवारी के मुकुट पर,
पीतपटवारी वाहि मूरति पै वारी हौं॥

एक मुसलमान शाइर ने भी कहा है—

सच्चे आशिक़ को भला बदनामियों का डर ही क्या ?
हम बिरहमन बन गये वह शेख़-काबा बन गए॥
इश्क़ के मज़हब में हाजत कुफ़्र और इसलाम क्या ?
हम भी अपने राम की उल्फ़त मे सीता बन गए॥

× × ×

अज़ो नबज़म नमी बीनद तबीबे-मन कि मी दानद।
कि अज़ सोज़े-जिगर आतिशबरायद पैरहन गीरद॥
मनह बे ताक़ती चन्दे तहम्मुल कुन तो परवाना।
कि शमअ् अज़ चहरा अफ़रोज़ी बिसाते अंजुमन गीरद॥

अर्थात्—

नब्ज़ न मेरी छू सकते हैं यह हकीम जग-व्याधि खिलौने।
भय है प्रेम-अग्नि से उनके जल न उठे वस्त्रों के कोने॥

अरे शलभ ! क्यों आकुल इतना टुक प्रदीप को जल लेने दे !
आत्म-त्याग कर तप करने दे, जग मे कुछ प्रकाश भरने दे ॥

मेरा प्रणय-ताप इतना बढ़ा हुआ है कि यदि हकीम मेरी नब्ज़ देखने के लिये मेरी बाँह को छुए तो, मुझे भय है कि, मेरे दग्ध हृदय से अग्नि की ज्वाला निकल कर कही उनके वस्त्रो को न जला दे। मुझे कोई ज्वर-ताप तो है नही, जो हकीम उसे औषध-द्वारा शांत कर सके। मै तो प्रेम की आग मे जल रही हूँ, जो यदि प्रज्वलित होगई तो हकीम की भी बलि लेलेगी !

जरा बिहारी को भी देखिये, कुछ-कुछ ऐसीही बात कह रहे है—

आड़े दै आले बसन, जाड़े हू की राति।
साहस कै कै नेह वश, सखी सबै ढिग जाति ॥

अय शलभ ! तू इतना आकुल क्यो है; आख़िर इतनी उत्सुकता की आवश्यकता क्या है ! अभी से प्रदीप पर क्यो निछावर हुआ जा रहा है। स्वर्गीया चकोरीजी के शब्दो मे आख़िर तू ने उसमे क्या आकर्षण देख लिया है—

"उसमे भरी मोहिनी शक्ति है क्या,
जिसको लख हो सुख पाते कहो ?
उसके उस ज्वालामुखी तन को,
किस लालच से लपटाते कहो ?
किस भ्रांति की जादूगरी मे फँसे,
तुम कौनसा हो सुख पाते कहो ?

पड़ के किस चाह की आग मे यो,
अपने तुम प्राण गँवाते कहो ?"

हे शलभ ! इतनी जल्दी न कर। यदि तुझे उस पर प्राण देना ही है तो प्रदीप को जलकर जरा संसार की शोभा तो बढ़ा लेने दे; उसे प्रकाश तो कर लेने दे। शलभ प्रेम की तीव्रता के कारण प्रदीप के जलने की प्रतीक्षा भी नही करना चाहता, वह तो उससे पहले ही प्राण-विसर्जन कर अपनी प्रेमनिष्ठा का प्रमाण प्रस्तुत कर देना चाहता है। इस मनोवैज्ञानिक रहस्य को एक शाइर ने यो बताया है—

"गुस्ताख़ बहुत शमअ़ से परवाना हुआ है—
सर चढ़ता है, मौत आई है, दीवाना हुआ है !"

और भी सुनिये—

"यह न पूछो कि परवाना क्या जानता है—
लगी दिल की जलकर बुझा जानता है !"

नूरम नारम हदीक़ाअम गुलज़ारम;
दैरम सनमम बिरहमनम ज़ुन्नारम;
नै नै ग़लतम दरम्याँ हेच नयम;
बू-ए-गुलम व तबीअ़ते-बीमारम।

अर्थात्—

मै प्रकाश की एक शिखा हूँ—
और अग्नि हूँ उपवन भी हूँ।

मैं यज्ञोपवीत, मन्दिर हूँ—
प्रतिमा और पुजारिन भी हूँ ।।
आह ! भूलती अरे नही कुछ,
मै तो एक अकिंचन-सी हूँ !
मुरझाए रोगी की तबीअत—
मंद सुगंधी उपवन की हूँ !

यह राजकुमारी का आत्म-परिचय है। उन्होने एक बार कहा था कि मै प्रकाश हूँ, अग्नि हूँ, कुसुमित वाटिका हूँ, मन्दिर हूँ, प्रतिमा हूँ, ब्राह्मण (पुजारी) हूँ, यज्ञोपवीत हूँ— तौबा ! मै भूल गई, मै तो इनमे से कुछ भी नहीं हूँ। मै यह क्या कह गई ! मैने अपने व्यक्तित्व को यह सब-कुछ कहकर बहुत-कुछ बढ़ा दिया। यह सब वस्तुएँ तो मुझसे कही श्रेष्ठ हैं। मै तो केवल एक रोगी की मनोवस्था-जैसी हूँ, या उपवन मे से बिखरनेवाली मद सुगंध हूँ। कितनी सुन्दर कल्पना है; रोगी की मनोवस्थावाली उपमा कैसी कोमल हुई है। काव्य-गगन की यह उड़ान कैसी अनूठी है। सब-कुछ होकर भी राजकुमारी अपने को 'कुछ नही' कहती है। जरा भगवतीचरण वर्मा का भी परिचय सुन लीजिये—

क्या हूँ ? इस अनन्त मे कण हूँ, मेरा कितना मोल ?
पर अनन्त पाओगी मुझमे—अपनी आँखे खोल।
यहाँ देखोगी रूप विराट—

दास हूँ मैं, मै हूँ सम्राट्, वास्तविकता हूँ, मै हूँ भ्रान्ति।
पुरुष हूँ कही, प्रकृति हूँ कहीं, शान्ति हूँ कही, कही हूँ क्रान्ति॥
चेतना हूँ मै, हूँ उन्माद, साधना हूँ मैं और अशान्ति।
फिर भी पूछ रही हो, लोगे क्या जीवन का मोल?
अरी बावली! सोच-समझकर अपनी बोली बोल॥

आत्म-बोध भी कितना दुर्बोध है!

× × × ×

दुख्तरे शाहम व लेकिन—
रू ब फक्र आवुर्दा अम॥
ज़ेबो जीनत बस हमीनम।
नामे मन जेबुन्निसाऽस्त॥

मै बनी सम्राट कन्या,
मन विरागी बन हँसा है—
और रमणीरत्न हूँ मै,
नाम भी ज़ेबुन्निसा है॥

राजकुमारी ज़ेबुन्निसा अपना परिचय इस प्रकार कराती है कि मै राजकन्या अवश्य हूँ, परन्तु मेरा मन वैराग्य की ओर है। मै स्त्रियो मे शोभा-रूप हूँ, क्योकि मेरा नाम ही जेबुन्निसा अर्थात् स्त्रियो का भूषण है। फारसी मे जेबुन्निसा का अर्थ है स्त्रियो का भूषण। वास्तव मे राजकुमारी रमणी-रत्न थी। यह आहे आत्मश्लाघा नही, राजकुमारी के मुख से निकला हुआ एक विकट

सत्य है। चकोरीजी का परिचय भी उनके ही शब्दो मे सुन लीजिये—

"नाम से हूँ विदित 'चकोरी' कवि-मण्डली मे,
किन्तु न कलङ्की निशानाथ से छली हूँ मै।
भावुक जनो के मंजु मानस सरोवर मे,
पंकज-पराग हेतु भ्रमित अली हूँ मै॥
विमल विभूति हूँ रसो मे चारु कल्पना की,
काव्य-कुसुमो मे एक नवल कली हूँ मै।
भक्ति देवि शारदा की, शक्ति दीन दलितो की—
"अरुण"* सनेही के सनेह मे पली हूँ मैं॥

× × × ×

अज ताबो तबस्सुम महरे समा रा कै ख़बर कर्द?
वज गिरिय-ए-मन अब्रो हवा रा कै खबर कर्द?
बेरूँ हमा सरसब्ज ब दरूनश हमा पुरखूँ,
अज हालते मन बर्गे हिना रा कै ख़बर कर्द?

मुझ दुखिया के दु:खद-गान उस सूरज से किसने गाये हैं?
मेघो से दु:ख-दशा कहदी क्यो? उमड-घुमड़ घन घिर आये हैं।
वाहर से हँसती पर भीतर घावो को मै पाल रही हूँ,
किसने महँदी को ये मेरे भाव हृदय के वतलाये है?

विरहानल मे दुग्ध राजकुमारी एक दृष्टि अपने चारो ओर डालती है। नीलाकाश के एक कोने पर पीत वर्ण सूर्य्य है

---

*'अरुण' स्व० चकोरीजी के पति का उपनाम है।

और इधर-उधर काली घटायें घिर रही हैं। अपनी व्यथा और वेदना का सादृश्य वह प्रकृति में पाकर कहती है कि मेरे दुःख की गाथा आज अंशुमाली से जाकर किसने कह दी कि वह भी आज पीत-वर्ण हो रहा है; और बादलों को मेरी करुण कहानी किसने सुना दी जिससे वे भी आज मेरे दुःख से दुःखित हो अश्रु बहाकर समवेदना प्रदर्शित कर रहे हैं। सुभद्राकुमारी चौहान के शब्दो मे—

हे ! काले-काले बादल,
ठहरो तुम बरस न जाना।
मेरी दुखिया आँखों से,
देखो मत होड़ लगाना !"

आज इस दुःख की वेला मे मॅहदी से भी किसीने जाकर मेरी व्यथा कह दी है, तभी तो वह बाहर से मेरी ही भाँति हरी-भरी है, किन्तु अन्तर मे असीम कसक छिपाए हुए है— पिसते ही रक्त-वर्ण होकर अपनी समवेदना का परिचय देती है। क्या नाजुक-खयाली है ! जग के साथ रह कर उसका-सा ही करना होगा। उसके इंगित पर हृदय मे हाहाकार छुपाए हुए भी हँसना होगा। जीवन की कैसी विभीषिका है ! बच्चनजी के शब्दो मे—

" मै यौवन का उन्माद लिए फिरता हूँ;
उन्मादो मे अवसाद लिये फिरता हूँ।

जो मुझको बाहर हँसा रुलाती भीतर,
मै हाय किसी की याद लिये फिरता हूँ।"

मनुष्य व्यथित होकर प्रकृति का प्रश्रय लेता है। वही उसे सदैव सहानुभूति और समवेदना का सहारा मिलता है। दु:ख की वेला मे प्रकृति उसे अवसादमयी प्रतीत होती है, और सुख के क्षणो मे थिरकती-इठलाती हुई। राजकुमारी की फारसी-कविता के यह भाव हिन्दी के तो अपने ही है। व्रज-भाषा-कोप तो विरहिणियो की दु:ख-गाथा और प्रकृति की उनके प्रति समवेदनाओ से भरा पड़ा है। पद्माकरजी को ही लीजिए; कहते है—

"ये व्रजचन्द्र चलो किन वा व्रज लूक बसंत की ऊकन लागी।
त्यो पद्माकर पेखो पलासन पावक-सी मनो फूँकन लागी॥
वै व्रजनारि बिचारी बधू बन बावरी लों हिये हूकन लागी।
कारी कुरूप कसाइन पै सु कुहू-कुहू क्वैलिया कूकन लागी॥"

मीरा ने कहा है—

"रहु-रहु पापी पपीहा रे! पिव को नाम न लेय।
जो कोइ विरहिनि साम्हले तो पिव कारन जिव देय॥"

× × × ×

खेजा करशमा रेजकुन नरगिसे नीम मस्त रा।
अज तहे जाम जुरी दह साक़ी-ए-मय-परस्त रा॥
वहरे शहादते-जहाँ यक निगाह अज तो वस वुयद।
गर्मो-गजब चे मी कुनी गमज-ए-तेज दस्त रा॥

अलसाई मादक आँखो से देखा तुमने यदि मुसकाकर—
साक़ी बेसुध हो कह देगा 'हाँ!' मादक प्याला छलका कर!
एक सरस चितवन से प्रियतम! जग पागल बन जायेगा—
फिर क्यो यह शृङ्गार, कुपित क्यो होती हो मदिरा ढलकाकर?

उठ, आज तुझे अवसर मिला है। यदि एक बार अपनी मदभरी आँखों से मुसकरा कर देख लो तो तुम्हारा प्रेमी तुम्हारे नेत्रो की मदिरा पीकर प्याले को छलका देगा, अर्थात् तुम्हारे प्रेम में दीवाना हो जायगा और मिलन का वचन देही देगा। प्रियतम! समस्त संसार को मोहित करने के लिए तुम्हारी केवल एक मादक दृष्टि ही बहुत है, अपने हाव-भाव एवं शृङ्गार के शस्त्रो का उपयोग क्यो करती हो? तुम्हारी एक प्रेम-भरी चित्त-वन और मुसकराहट से ही ग़ज़ब हो जाता है—

"देख अरे! मादक नयनो से,
हँस देती तुम बारम्बार।
इधर झनक उठते है, जग की
हृद्तन्त्री के टूटे तार॥

फैयाज़ साहब ने भी तो फरमाया है—

"सारे जहाँ के क़त्ल को काफी है तेरी एक नज़र।
इतना ख़फा है किसलिए अपने फिदाइयो से तू॥"

× × × ×

दर्द कि ज कैदे सितम
आजाद न गश्तम।

जो मुझको बाहर हँसा रुलाती भीतर;
मै हाय किसी की याद लिये फिरता हूॅ !"

मनुष्य व्यथित होकर प्रकृति का प्रश्रय लेता है। वही उसे सदैव सहानुभूति और समवेदना का सहारा मिलता है। दुःख की वेला मे प्रकृति उसे अवसादमयी प्रतीत होती है, और सुख के क्षणो मे थिरकती-इठलाती हुई। राजकुमारी की फारसी-कविता के यह भाव हिन्दी के तो अपने ही है। व्रज-भाषा-कोप तो विरहिणियो की दुःख-गाथा और प्रकृति की उनके प्रति समवेदनाओ से भरा पड़ा है। पद्माकरजी को ही लीजिए, कहते है—

"ये व्रजचन्द्र चलो किन वा व्रज लूक बसंत की ऊकन लागी।
त्यो पदमाकर पेखो पलासन पावक-सी मनो फूॅकन लागी॥
वै व्रजनारि विचारी बधू बन बावरी लो हिये हूकन लागी।
कारी कुरूप कसाइन पै सु कुहू-कुहू क्वैलिया कूकन लागी॥"

मीरा ने कहा है—

"रहु-रहु पापी पपीहा रे! पिव को नाम न लेय।
जो कोइ विरहिनि साम्हले तो पिव कारन जिव देय॥"

× × × ×

खेजा करशमा रेजकुन नरगिसे नीम मस्त रा।
अज तहे जाम जुरी दह साक़ी-ए-मय-परस्त रा॥
वहरे शहादते-जहाॅ यक निगाह अज तो बस बुयद।
गर्मो-गजब चे मी कुनी गमज-ए-तेज दस्त रा॥

अलसाई मादक आँखों से देखा तुमने यदि मुसकाकर—
साक़ी बेसुध हो कह देगा 'हाँ!' मादक प्याला छलका कर!
एक सरस चितवन से प्रियतम! जग पागल बन जायेगा—
फिर क्यों यह शृङ्गार, कुपित क्यों होती हो मदिरा ढलकाकर?

उठ, आज तुझे अवसर मिला है। यदि एक बार अपनी मदभरी आँखों से मुसकरा कर देख लो तो तुम्हारा प्रेमी तुम्हारे नेत्रों की मदिरा पीकर प्याले को छलका देगा, अर्थात् तुम्हारे प्रेम से दीवाना हो जायगा और मिलन का वचन देही देगा। प्रियतम! समस्त संसार को मोहित करने के लिए तुम्हारी केवल एक मादक दृष्टि ही बहुत है, अपने हाव-भाव एवं शृङ्गार के शस्त्रों का उपयोग क्यों करती हो? तुम्हारी एक प्रेम-भरी चित्त-वन और मुसकराहट से ही ग़जब हो जाता है—

"देख अरे! मादक नयनों से,
हँस देती तुम बारम्बार।
इधर झनक उठते है, जग की
हृद्तन्त्री के टूटे तार॥

फैयाज़ साहब ने भी तो फरमाया है—

"सारे जहाँ के क़त्ल को काफी है तेरी एक नजर।
इतना ख़फ़ा है किसलिए अपने फिदाइयों से तू॥"

× × × ×

दर्द कि ज कैदे सितम
आजाद न गश्तम।

एक लहज़ा ज़ ग़महाय
जहाँ शाद न गश्तम ॥

× × × ×

हा ! अत्याचारों के बन्धन,
से स्वतन्त्र मैं रह न सकी हूँ ।
पल भर भी भव-बाधा से बच,
सुख-सरिता मे बह न सकी हूँ ॥

राजकुमारी जेबुन्निसा का अन्तिम समय सलीमगढ़ के दुर्ग में बन्दिनी की तरह कटा था। सुख, वैभव और विलास की गोदी मे पली, वह सुकुमारी जिसके एक इंगित पर साम्राज्य काँप उठता था, एक दीन भिखारिणी की भाँति विश्व की उपेक्षा और तिरस्कार अपने ऊपर लादे किले की चहारदीवारी के अन्दर बन्द अपने यौवन, समृद्धि से विदा लेकर, गिन-गिन कर जीवन के दिन काट रही थी। जिस समय उसका संसार हँसता था उसे उस अवस्था को स्थिर रखने के लिये नाना प्रकार की चिन्तायें करनी पडती थीं, और अब जब कि सब कुछ लुट और उजड़ चुका था उसे अतीत की स्मृति आकुल किये हुई थी। राजकुमारी हृदय मे व्यथा और वेदना को जगाये कितने करुण स्वर मे कहती है कि अफसोस ! मै जुल्म के हाथो से बच न सकी। पल भर को भी सांसारिक चिन्ताओ से मुक्त होकर मै खुश न रह सकी। हमारी राजरानी मीरा भी तो अत्याचारो का शिकार हुई थी। उन्होंने स्वय कहा है—

साँप पिटारा राणा भेज्यो, मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय, धोय जब देखन लागी, सालिगराम ही पाय॥
ज़हर का प्याला राणा भेज्यो, अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय, धोय जब पीवन लागी, हो अमर अचाय॥

और अपनी भव-बाधाओं के लिये, विश्व की उपेक्षा के लिये वे कहती है—

बिन मन्दिर, बिन आँगने रे, खिन-खिन ठाढ़ी होय।
घायल ज्यूँ घूमूँ खड़ी, म्हारी बिथा न जाने कोय॥

कितनी तड़पन है! कितनी कसक है! राजकुमारी और राजरानी मीरा मे कितना साम्य है!

× × × ×

ता मरा जंजीर दर,
पाये दिले दीवाना शुद।
दोस्त शुद, दुश्मन मरा,
हर आशना बेगाना शुद॥

पग में बेड़ी जब से मेरे,
पड़ी, हृदय है दीवाना।
मित्र बने है शत्रु तभी से,
अपना भी है बेगाना॥

बन्दी राजकुमारी दिनो के फेर से प्रभावित होकर कहती हैं कि जब से मेरे पैरो मे बेड़ी डाल दी गई है और दिल दीवाना होगया है तब से मेरे मित्र भी शत्रु बन गये हैं और जो अपने